हिंदी पत्रिका

सुबह

संयुक्तांक- 2020

महानिदेशक लेखापरीक्षा का कार्यालय, केंद्रीय, कोलकाता
गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया प्रेस बिल्डिंग (ईस्ट विंग), प्रथम तल
8, किरण शंकर रॉय रोड, कोलकाता 700 001.

पत्रिका परिवार

संरक्षक

श्री दीपक नारायण

महानिदेशक लेखापरीक्षा (केंद्रीय) कोलकाता

परामर्शदाता

श्री आर. श्याम

उप-निदेशक (प्रशासन)

संपादक

श्री रमेश झा

हिंदी अधिकारी

सदस्यगण

श्री सुनील कुमार साव
वरिष्ठ अनुवादक

श्री रंजन कुमार
वरिष्ठ लेखापरीक्षक

सुश्री नीलम कुमारी साव
कनिष्ठ अनुवादक

सुश्री दीपान्निता दास
कनिष्ठ अनुवादक

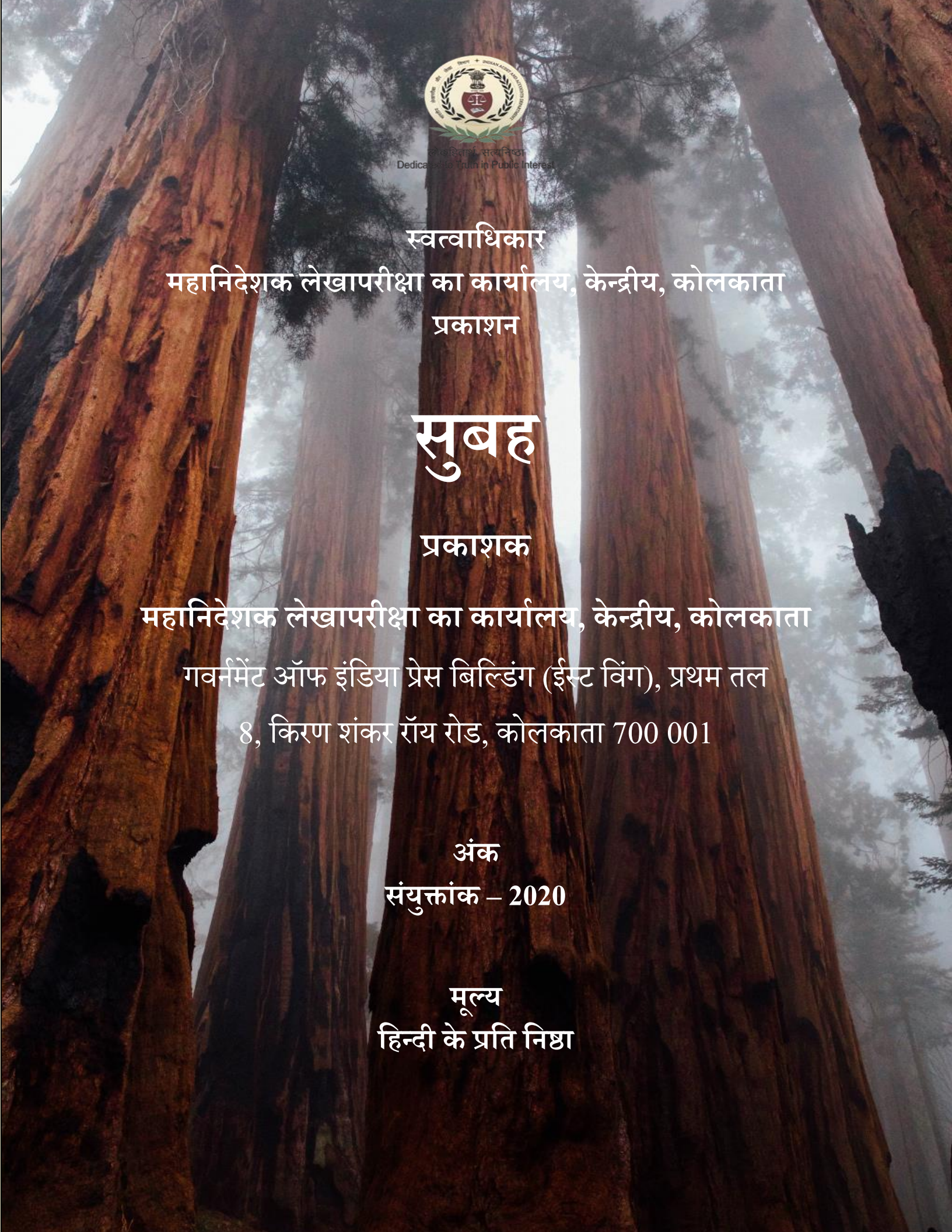

स्वत्वाधिकार
महानिदेशक लेखापरीक्षा का कार्यालय, केन्द्रीय, कोलकाता

प्रकाशन

सुबह

प्रकाशक

महानिदेशक लेखापरीक्षा का कार्यालय, केन्द्रीय, कोलकाता

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस बिल्डिंग (ईस्ट विंग), प्रथम तल

8, किरण शंकर रॉय रोड, कोलकाता 700 001

अंक

संयुक्तांक – 2020

मूल्य

हिन्दी के प्रति निष्ठा

महानिदेशक लेखापरीक्षा (केन्द्रीय), कोलकाता

संदेश

राजभाषा हिन्दी हमारी राष्ट्रीय एकता, धार्मिक सहिष्णुता एवं मेल-मिलाप की भाषा है। इसके विकास पर ही हमारा साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय विकास निर्भर है। अतः इसका प्रचार-प्रसार करना हम सब का परम कर्तव्य है। इस कार्यालय की पत्रिका "सुबह" राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इसने कार्यालय में पठन-पाठन एवं सृजन का एक अनूठा वातावरण तैयार किया है।

पत्रिका के नवीन अंक के प्रकाशन पर मैं पत्रिका प्रकाशन के सभी सदस्यों, रचनाकारों एवं पाठकवृन्द को हार्दिक बधाई देता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि कार्यालय के अधिकारी/कर्मचारी इसी प्रकार अपना पूर्ण सहयोग देते रहेंगे तथा पत्रिका की निरन्तरता बनाए रखेंगे।

पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं।

दीपक नारायण

महानिदेशक

लोकहितार्थ सत्यनिष्ठा
Dedicated to Truth in Public Interest

महानिदेशक लेखापरीक्षा का कार्यालय, केन्द्रीय, कोलकाता

संदेश

राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार की दिशा में कार्यालय की राजभाषा पत्रिका "सुबह" के नवीनतम अंक के प्रकाशन पर मैं अत्यन्त हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। पत्रिका का कुशल प्रकाशन कार्यालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की राजभाषा के प्रति कुशल निष्ठा का परिचायक है।

यह पत्रिका कार्यालय में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी व्यस्त दिनचर्या में से उसके सर्जनात्मक सामर्थ्य को व्यक्त करने का अवसर प्रदान करती है। पत्रिका में सम्मिलित रचनाएँ रचनाकारों की लेखन प्रतिभा के साथ-साथ राजभाषा के प्रति उनके प्रेम को भी इंगित करती हैं। रचनाकारों के कुशल प्रयास के लिए मैं उनकी सराहना करता हूँ तथा कामना करता हूँ कि आप सब के सहयोग से पत्रिका अपने अनवरत सफल प्रकाशन से उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहे।

पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य के लिए आप सबके हार्दिक सहयोग की कामना करता हूँ।

उप-निदेशक (प्रशासन)

सम्पादकीय

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि हमारे कार्यालय गृह-पत्रिका "सुबह" के नवीन अंक का प्रकाशन किया जा रहा है। राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में और कार्यालय में, हिंदी में कार्य करने की प्रवृत्ति को बढ़ाने के लिए इस पत्रिका के पास अपार सम्भावनाएं हैं।

हिन्दी आज जन –जन की भाषा बन चुकी है। हमारे देश की अधिकांश भू-भाग पर बोली जाने वाली हिन्दी अब केवल राजभाषा एवं संपर्क भाषा ही नहीं हैं बल्कि वह विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है। हिन्दी भाषा के इसी स्वरूप एवं राष्ट्र निर्माण में हिन्दी के महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुए हमारी संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को हिन्दी को राजभाषा के रूप में अंगीकार किया था। इसी दिन से हम प्रत्येक वर्ष 14 सितंबर को 'हिन्दी दिवस' के रूप में मनाते है।

सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग पहले की तुलना में अब काफी बढ़ रहा हैं। हमें इसके उत्तरोत्तर प्रयोग बढ़ाने के लिए प्रयासरत रहना होगा। कार्यालयों में हिन्दी के प्रयोग के लिए और अधिक उत्साहवर्धक एवं अनुकूल वातावरण बनाया जा रहा है तथा सरकारी कार्यों में हिन्दी में मूल लेखन को प्रोत्साहित किया जा रहा है। अधिकारी/कर्मचारी टिप्पणियाँ एवं मसौदे इत्यादि मूल रूप से हिन्दी में तैयार करने एवं हिन्दी में पत्राचार को पूरे मनोयोग से बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। साथ ही सरकारी कार्यों में सहज एवं सरल हिन्दी के प्रयोग पर भी बल दिया जा रहा है।

पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति की हार्दिक शुभकामनाओं सहित ।

रमेश कुमार

हिन्दी अधिकारी

अनुक्रमणिका

1.	कार्यालयीन कार्य में हिन्दी की प्रकृति	श्री सुनील कुमार साव, वरिष्ठ अनुवादक
2.	कोरोना काल की रचनाएँ	श्री परमेश्वर कुमार, सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी
3.	सपने	सुश्री पूजा दास, वरिष्ठ लेखापरीक्षक
4.	व्यक्ति विशेष	श्री रमेश झा, हिंदी अधिकारी
5.	हिंदी ही क्यों	श्री उत्तम कुमार मिश्रा, सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी
6.	शब्द	सुश्री नीलम कुमारी साव, कनिष्ठ अनुवादक
7.	'माँ', तुम बहुत याद आओगी	श्री रंजन कुमार, वरिष्ठ लेखापरीक्षक
8.	हसरत	श्री राजु हाजरा, सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी
9.	असम की मनोरम अरण्य वाटिका : काज़ीरंगा राष्ट्रीय उद्यान	सुश्री दीपान्निता दास, कनिष्ठ अनुवादक
10.	खुद से ही दूर हुए जा रहा हूं	श्री विजय कुमार, एम टी एस
11.	माँ ऐसी ही होती है	श्री विजय कुमार, एम टी एस
12.	ज़िंदगी-एक नज़्म	कल्पना वर्मा, कनिष्ठ अनुवादक
13.	अद्वितीय अंडमान	कल्पना वर्मा, कनिष्ठ अनुवादक

सुनील कुमार साव
वरिष्ठ अनुवादक

ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाने के बाद स्वाधीन भारत की संविधान सभा ने 14 सितंबर, 1949 को निर्णय लिया कि संघ के राजकाज की आधिकारिक भाषा यानी राजभाषा हिंदी होगी। यह तय किया गया कि 15 वर्षों तक देश में हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी भी चलती रहेगी। इसके पीछे यह अवधारणा थी कि इस 15 वर्ष की पर्याप्त अवधि में शासन-प्रशासन का समस्त कामकाज राजभाषा हिंदी में होने लगेगा। लेकिन अनेक अवांछित कारणों और कटु कारकों के चलते इस निर्धारित अवधि में यह संभव नहीं हो सका। परिणामत: सन् 1963 में राजभाषा अधिनियम बनाया गया ताकि संघ के राजकाज में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को अमल में लाया जा सके। राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3(3) में यह आदेशपूर्वक निर्दिष्ट किया गया कि सर्वसाधारण को लक्ष्य कर तैयार किए जाने वाले सभी दस्तावेज, नामत: कार्यालय आदेश, ज्ञापन, परिपत्र, सूचना, अधिसूचना, विज्ञापन, निविदा, संविदा, अनुज्ञप्ति, करार, संसद के दोनों सदनों में पेश किए जाने वाले प्रशासनिक और अन्य प्रतिवेदन आदि अंग्रेजी के साथ-साथ अनिवार्यत: हिंदी में भी जारी किए जाएँ। अर्थात् ये सभी सरकारी दस्तावेज अनिवार्यत: द्विभाषी रूप में ही जारी किए जाएँ और इसका दृढ़तापूर्वक पालन किया जाए। इसका उल्लंघन होने पर इन दस्तावेजों पर अंतिम रूप से हस्ताक्षर करने वाले अधिकारी को जिम्मेदार ठहराया जाएगा।

हिंदी की स्थिति - संघ की राजभाषा नीति के सतत क्रियान्वयन में यह एक महत्वपूर्ण पड़ाव था और यहीं से सरकारी कार्यालयों में हिंदी अनुवादकों और राजभाषा अधिकारियों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई और सरकार को संसद के दोनों सदनों समेत सभी मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों, अधीनस्थ कार्यालयों, निगमों, उपक्रमों, बैंकों और सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों आदि में हिंदी अनुवादकों और राजभाषा अधिकारियों की पूर्णकालिक और स्थायी नियुक्ति, और वह भी पर्याप्त संख्या में नियुक्ति की तत्काल आवश्यकता बेहद शिद्दत से महसूस हुई। यों तो विशेष प्रकार के अनुवादों यथा नियमों, कोडों, मैन्युअलों, तकनीकी व विधिक साहित्य, शोध, अनुसंधान आदि जैसे दस्तावेजों के केंद्रीकृत अनुवाद के लिए विधि मंत्रालय के साथ-साथ केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो भी सक्रिय था। लेकिन सांविधिक, विधिक और तकनीकी अनुवादों के अलावा सामान्य अनुवादों के लिए भी भारत सरकार के हरेक मंत्रालय, विभाग, कार्यालय, संगठन, बैंक, उपक्रम आदि में हिंदी अनुवादकों की भर्ती शुरू हुई और राजभाषा नीति के व्यापक कार्यान्वयन और राजभाषा अधिनियम, 1963, राजभाषा संकल्प, 1968 तथा राजभाषा नियम, 1976 के अनुपालन की निगरानी के लिए राजभाषा अधिकारियों एवं राजभाषा संवर्ग के अधिकारियों यथा सहायक निदेशक (राजभाषा), निदेशक (राजभाषा) इत्यादि की नियुक्तियों को गति मिली। फलस्वरूप, हरेक मंत्रालय, विभाग, अधीनस्थ कार्यालय, संगठन, बैंक इत्यादि में उनकी कुल स्टाफ संख्या के एक निश्चित अनुपात के रूप में न केवल हिंदी टंककों, हिंदी आशुलिपिकों की, वरन् कनिष्ठ हिंदी अनुवादकों, वरिष्ठ हिंदी अनुवादकों और राजभाषा अधिकारियों, सहायक निदेशकों, निदेशकों आदि के पदों का पर्याप्त संख्या में सृजन भी किया गया।

नीतिगत तौर पर हिंदी टंककों, हिंदी आशुलिपिकों समेत हिंदी अनुवादकों, हिंदी अधिकारियों एवं राजभाषा संवर्ग के अधिकारियों आदि की नियमित नियुक्तियों की शुरूआत से संघ की राजभाषा नीति की अपेक्षाओं की आंशिक पूर्ति तो अवश्य हुई। कार्यालयों में रोजमर्रे के कामकाज और नेमी किस्म के पत्राचार, टिप्पण, प्रविष्टि आदि हिंदी में करने का

दबाव भी बढ़ा और कार्यालयों के नाम, नामपट्ट, सूचनापट्ट, मोहर, सील, पत्रशीर्ष, लिफाफे आदि ही नहीं बल्कि नेमी किस्म के प्रपत्रों, फॉर्मों, पर्चियों आदि समेत रेलवेज, एयरवेज आदि के आरक्षण-फॉर्म, टिकट, बैंकों की निकासी व जमा पर्चियाँ, चेकबुक, पासबुक इत्यादि भी हिंदी में प्रदर्शित, प्रकाशित और मुद्रित होने लगे। इतना ही नहीं, सरकारी सेवाओं के लिए ली जाने वाली समस्त भर्ती परीक्षाओं के प्रश्नपत्र भी अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी में भी अनिवार्यत: तैयार किए जाने लगे और इन भर्तियों के लिए आयोजित होने वाले साक्षात्कारों में भी हिंदी में उत्तर देने का प्रावधान किया गया। इनके अलावा मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों, संगठनों, बैंकों, उपक्रमों, इकाइयों आदि की वार्षिक रिपोर्टें भी अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी में भी तैयार की जाने लगीं और सभी प्रदर्शित, प्रकाशित व मुद्रित दस्तावेजों व नामपट्ट, पत्रशीर्ष, मोहर इत्यादि में हिंदी को वरीयता प्रदान की गई, अर्थात् पहले हिंदी और फिर अंग्रेजी। जहाँ तीन भाषाएँ हैं, वहाँ सर्वप्रथम प्रांतीय भाषा, फिर हिंदी और अंत में अंग्रेजी। यहाँ विशेष रूप से यह भी निर्दिष्ट किया गया कि तीनों भाषाओं के अक्षर के आकार एक समान हों, रंग एक समान हों और उनमें प्रयुक्त सामग्री अनिवार्यत: एक हों।

संघ की राजभाषा नीति बेहद संवेदनशील एवं सर्वसमावेशी है और यहाँ किसी भी भाषा को कमतर या बेहतर नहीं बताया गया है। संविधान के 17वें भाग में अनुच्छेद 351 में यह स्पष्ट कहा गया है कि "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्दभंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।"सभी सरकारी मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों, बैंकों, सार्वजनिक उपक्रमों, इकाइयों आदि में, सरकारी कामकाज में, नामपट्टों, मोहरों, साइनबोर्डों, पत्रशीर्षों, लिफाफों आदि से लेकर सरकारी सूचनाओं, विज्ञापनों, परीक्षा के प्रश्नपत्रों, नेमी फॉर्मों, टिकटों, बैंक की आहरण व निकासी पर्चियों आदि में अंग्रेजी के अलावा जो प्रचुर हिंदी या थोड़ी-बहुत हिंदी दिखती है, वह संघ की इसी राजभाषा नीति के बूते और बदौलत है! संघ की राजभाषा नीति के सतत कार्यान्वयन को भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही तमाम प्रशिक्षण योजनाओं और प्रोत्साहन योजनाओं यथा; हिंदी शिक्षण योजना के तहत प्राज्ञ, प्रवीण, प्रबोध परीक्षाएँ, प्रशंसा पत्र, नकद प्रोत्साहन पुरस्कार, राजभाषा शील्ड आदि का मूल उद्देश्य सरकारी कामकाज में हिंदी को बढ़ावा देना है क्योंकि ये योजनाएँ राजभाषा अधिकारियों के लिए नहीं बल्कि विभागों के समस्त कर्मचारियों-अधिकारियों को हिंदी में कामकाज करने में सक्षम बनाने और इस दिशा में उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए ही चलाई जाती हैं। हिंदी भाषाभाषी के अलावा अहिंदी भाषाभाषी भी और विशेषकर दक्षिण भारतीय लोगों में हिंदी सीखने और हिंदी में कामकाज करने को लेकर अपेक्षाकृत ज्यादा उत्साह और समर्पण हर जगह देखने को मिलता है और हिंदी जानने वाले लोगों की तुलना में वे हिंदी में कामकाज को बढ़ावा देने में अहम भूमिका निभाते देखे जाते हैं।

कार्यालयीन हिन्दी का स्वरूप : भाषा का मुख्य उद्देश्य है अपनी बात सामने वाले से या जिसके लिए प्रयुक्त हो उसे आसानी से समझाई जा सके वह आसानी से ग्राह्य हो। समस्त उपबंधों के होते हुए भी आम लोगों में यह धारणा है कि हिन्दी का प्रयोग कठिन होगा क्योंकि साहित्यिक हिन्दी अपेक्षाकृत कठिन होता है और यदि इस हिन्दी का प्रयोग आम पत्राचार में किया जाए तो हास्यास्पद या समझने में कठिनाई आएगी। शायद इसी भ्रम के कारण लोग हिन्दी को अपनाने से कतराते हैं। इस समस्या के निजात के लिए भारत सरकार, राजभाषा विभाग द्वारा आसान हिन्दी के प्रयोग पर बल दिया गया है। आसान हिन्दी का अर्थ है स्थानीय एवं आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग सरकारी कार्यों के लिए किया जाए। इस प्रकार से हिन्दी का प्रचलन बढ़ेगा। चूंकि हमारा देश विभिन्न भाषा-भाषी समुदायों से युक्त है अतः आसान हिन्दी समझ पाना सबके लिए आसान होगा तथा क्षेत्र विशेष के प्रचलित शब्दों के प्रयोग से भाषा की धारा भी सुचारु

रूप से चलती रहेगी तथा इससे हिन्दी का प्रयोग भी बढ़ेगा। आम तौर पर देखा गया है कि आसान शब्दों को ग्रहण करने में जितनी आसानी होगी उतनी ही कठिनाई एवं भारी भरकम शब्दों के साथ आएगी। जिन सरकारी कार्यालयों में इस विधि का अनुसरण किया गया वहाँ हिन्दी का प्रचार-प्रसार अपेक्षाकृत अधिक ही हुआ। उदाहरण स्वरूप अंग्रेजी के शब्द approval के लिए हिन्दी के कई विकल्पों के प्रयोग किए जा सकते हैं जो अनुमोदन, संस्तुति आदि हो सकता है। यह भी प्रावधान किया गया कि यदि कोई कार्मिक हिन्दी लिखने में वर्तनी संबन्धित यदि कोई त्रुटि भी करता है तो उसे इस बात के लिए हतोत्साहित करने की बजाय प्रोत्साहित किया जाए कि उसने हिन्दी में लिखने का प्रयास तो प्रारम्भ किया।

कई बार ऐसा देखा गया ही कि अंग्रेजी में प्राप्त पत्रों को हिन्दी में अनूदित करवाने की आवश्यकता पड़ जाती है। अनुवाद करते समय अधिकांशतः लोग शब्दानुवाद का प्रयास करते हैं। शब्दानुवाद कुछ हद तक तो ठीक है पर जब हम यह अनुवाद आसानी से भाषा के कथ्य को समझने के लिए करते हैं तो कहीं-कहीं शब्दानुवाद के कारण उस विषय का मूल अर्थ भारी और उबाऊ होने के साथ समझ से परे हो जाता है। ऐसे में यह सलाह दी जाती है कि भावानुवाद किया जाए तथा दिये गए अंग्रेजी पाठ के मूल कथ्य को प्रदर्शित किया जाए ताकि उसे समझने में आसानी हो तथा उसके अनुरूप पत्राचार किया जा सके। सरकारी कामकाज में पहले देखा गया है कि अंग्रेजी के कुछ ऐसे वाक्य होते हैं जिनका हिन्दी अनुवाद बड़ा ही कठिन लगता है या हिन्दी में उन शब्दों या वाक्यों का प्रयोग करना बड़ा ही अटपटा लगता है जैसे I am directed to say /I am directed to forward… ऐसा माना जाता है कि पत्र जारी करने वाला अधिकारी अपने से कुछ नहीं कर रहा है। वह सरकार के अनुदेश पर समस्त कार्य करता है इसीलिए हमेशा पत्राचार में यह वाक्य प्रयोग किया जाता है। इनका हिन्दी में अनुवाद मुझे यह कहने का निदेश हुआ है/मुझे.... अग्रेषित करने का निदेश हुआ है। अंग्रेजी के पत्र में सम्बोधन के लिए Dear Sir का प्रयोग होता है पर हिन्दी में महोदय लिखा जाता है। अंग्रेजी पत्राचार में Yours faithfully, लिखा जाता है पर इसके हिन्दी रूप में आपका विश्वासी लिखना कतई उपयुक्त नहीं होगा। इसके स्थान पर हम भवदीय लिखा जाता हैं।

कार्यालयों में आम पत्राचार के अतिरिक्त एक और चीज प्रचलन में है जिसे नोटिंग कहा जाता है। सरकारी कार्यालयों में कोई भी कार्य बिना फाइल पर टिप्पणी के नहीं किया जा सकता। कार्य करने वाला सहायक कोई भी बात या अपने उच्चाधिकारी को फाइल पर नोट के रूप में लिखकर करता है। इसे अंग्रेजी में नोटिंग (Noting) कहा जाता है। उसकी बात पर उच्चाधिकारी द्वारा तदनुसार कार्य करने का अनुदेश दिया जाता है। कार्यालय के पत्राचार का यह प्रथम सोपान होता है। अंग्रेजी में लिखे जाने वाले नोट अमूमन passive voice, third person के रूप में लिखे जाते हैं पर हिन्दी में सीधे सपाट शब्दों में तथा आसान वाक्यों में लिखने पर बल दिया जाता है। अंग्रेजी के वाक्यांश में देखें तो please शब्द का खूब प्रयोग होता है। पर यह माना जाता है कि प्रशासनिक कार्यों में भावना का स्थान नहीं होता है अतः ऐसे शब्दों को पत्राचार में प्रयोग न किया जाए। सीधे एवं सपाट शब्दों में अपनी बात कही जाए। तदनुसार उच्च अधिकारी द्वारा भी अपनी टिप्पणी दी जाती है।

नोटिंग के बाद ड्राफ्टिंग का क्रम आता है। ड्राफ्टिंग का अर्थ है किसी भी पत्र या विवरण का मसौदा तैयार करना। कोई भी पत्र या पत्राचार के लिए विवरण पहले उच्चाधिकारी द्वारा अनुमोदन करवाना आवश्यक होता है। इसके लिए सहायक द्वारा लिखा जाने वाला समस्त विवरण पत्र/ज्ञापन/परिपत्र के रूप में मसौदा उच्चाधिकारी के पास प्रस्तुत किया जाता है। उच्चाधिकारी द्वारा उक्त विवरण का अवलोकन करने के बाद उसमें या तो संशोधन का सुझाव दिया जाता है या फिर

उसका अनुमोदन कर दिया जाता है। तदनुसार पत्र के अंतिम स्वरूप को अधिकारी द्वारा हस्तक्षार करने के बाद कार्मिक द्वारा जारी कर दिया जाता है।

कार्यालयीन हिन्दी एवं अंग्रेजी में अंतर देखें तो सदा यह सलाह दी जाती है कि आसान हिन्दी का प्रयोग करें। इसके लिए आपके मन में जो विचार आता है, या जो कहा जाना है उसे साफ एवं स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत करें। राजभाषा अधिनियम के उपबंधों के अनुसार हिन्दी में प्रस्तुत किए गए मसौदे या नोट के लिए कोई भी अधिकारी उसके अंग्रेजी अनुवाद की मांग नहीं कर सकता है। चूंकि बहुत कम लोग ही सीधे अंग्रेजी में सोचकर अपनी बात अंग्रेजी में ही लिख पाने में समर्थ होते हैं, अधिकांशतः आम भारतीय कोई भी बात अंग्रेजी में लिखने से पूर्व अपने मातृभाषा में सोचता है फिर उन शब्दों या वाक्यों को मन ही मन अंग्रेजी में अनूदित करने का प्रयास करता है। अनुवाद की प्रक्रिया में हमेशा व्याकरणिक शुद्धियों का ध्यान रखना पड़ता है। यदि थोड़ी सी अशुद्धि हो जाए तो अर्थ का अनर्थ हो जाने का अंदेशा रहता है। अंग्रेजी लिखने के इस प्रयास में अत्यधिक मानसिक श्रम करना पड़ता है। इसके इतर यदि हम हिन्दी में लिखने का प्रयास करते हैं तो हमें अधिक श्रम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। हिन्दी में लिखने का सबसे बड़ा फायदा यही है कि वाक्य संरचना में शब्दों की क्रम यदि आगे पीछे भी हो जाए तो वाक्य का अर्थ नहीं बदलता है। और फिर अपनी भाषा में अपनी बात कहना अधिक आसान होता है। हिन्दीत्तर भाषाई क्षेत्र के लोगों के लिए भी अपने मातृभाषा से अंग्रेजी की बजाय हिन्दी में कोई बात अनूदित कर कहना अत्यधिक आसान होता है। ऐसे में हिन्दी में सरकारी काम अत्यधिक आसान होता है।

परमेश्वर कुमार
सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी

1. सुंदरी

नर्सिंग होम में सालों से सेवा दे रहे सफाई सेवक,सौगत दास का पुनः सकपकाते हुए आग्रह-- "मरीज मेरे पड़ोसी है। थोड़ी रियायत मिल जाती तो....।
"नो कनसेशन! नो डिस्काउंट! पीपीई किटेर एक-एक सुतोर चार्ज दिते होबे!"— सौगत दास की जुबान बीच मे ही बंद करते डॉ॰ घोष, हॉस्पिटल इंचार्ज, ज़ोर से गरजे। "चाकरी कोरते चान ना की (नौकरी करना नहीं चाहते हैं क्या)?''
दास बाबू की मिन्नते भी बेअसर.....।

सुंदरी महज चार मास ही दूर थी सत्रहवे बसंत से। मृगनयन, गेहुआँ छरहरा बदन और कमर तक बलखाते काले बाल सौन्दर्य में चार चाँद लगाते । चेहरे का नूर अलौकिक। होठों की मुस्कान से पत्थर भी पिघल जाय। सम्पूर्ण वातावरण अनुपम सौंदर्य का पिपासु । गृहकार्य में दक्ष विलक्षण संस्कारी नारी का प्रतिबिम्ब। सुंदरी, निश्चय ही स्वप्नपरी थी।

बेटी के जवान होते ही पिता की मुश्किलें बढ़ना लाजिमी था। आखिर कब तक सुंदरी लाडली बनी रहती। एक दिन पराया तो होना ही था, बेटी जो थी। सौंदय और गुणों की देवी, बावजूद संभ्रांत और पुरुष प्रधान समाज को इसकी क्या कद्र?

धनीराम उलझ के रह गए थे। एकलौती बेटी के लिए कई लड़के देखे, परन्तु ले-देकर बात दहेज पर अटक जाती। बेटी बोझ नहीं है, पर पिता क्या करे? दर-ब-दर तलाश जारी रखी। महीनों गुजरने के बाद आखिर पूरे पचास हज़ार नकद पर सुंदरी का रिश्ता तय हुआ। पर "पहले पैसा उसके बाद ही शादी की कोई रस्म होगी!"-- लकड़े वाले की कठोर शर्त।

खुशियों की सीमा न थी सुंदरी का। शादी-ब्याह के ख्याल मात्र से ही चेहरे की लालिमा निखर जाती। ख्वाइशों की लहर शांतचित मन को बेचैन कर देते । होनेवाले जीवनसंगी की परिकल्पना से सुंदरी आह्लादित हो जाती। विह्वल मन, मधुर मिलन को उत्सुक। श्रृंगार से अलंकृत तन हर समय कलरव करते।

दहेज की किश्त देने का समय आ चुका था ऐसे में धनीराम की व्याकुलता ज़ोर पकड़ती जा रही थी। वर्षों से शहर के गारमेंट फैक्ट्री में कार्यरत धनीराम का जीवन धैर्य और संघर्ष से आच्छादित था । बावजूद परिवार की खुशहाली सबके लिए एक मिसाल थी।
कोरोना काल मे फैक्ट्री क्या बंद हुई, परिवार का लालन-पालन मुश्किल होने लगा। खुशियों पर ग्रहण लगना शुरू हो चुका था। जो कुछ बचत थी धीरे-धीरे खर्च होते जा रही थी। ले-देकर प्रोविडेंट फण्ड ही अंतिम सहारा था। बेटी की शादी-दहेज के लिए संचित राशि अब निकालने का समय आ चुका था।

नौकरी से मिलता ही कितना था? काट-छांट और ओवरटाइम मिलाकर कुल तिहत्तर सौ रुपए मासिक। आज के युग में इतनी मासिक आय से होती भी क्या? जो मिलती पेट पालने और दवा-दारू में ही निकल जाती। अब तो धनवती भी बेजान थी। चल फिर सकती तो बारी-झाड़ी से कुछ हाथ आता! किससे मदद की उम्मीद करे? धनीराम का शरीर भी कौन अच्छा था? पुलिंदा थे बीमारियों का। एड़ी-घुटने के दर्द से लेकर शुगर, ब्लड-प्रेशर,कब्ज, गैस, दमा और माइग्रेन

तक शरीर के प्रत्येक कतरा पर काबिज थे। बेढंगा काम भी बढ़ती उम्र में कोई देने को तैयार नहीं। लॉकडाउन ने, जो था उसे भी छीन लिया।

धनीराम को पीएफ ऑफिस के चक्कर लगाते भी कई दिन बित गए थे। पर क्या आसान था, प्रोविडेंट फण्ड से रुपये लेना? नित्य बदलते नियम और पोर्टल सुविधाओं के बावजूद पैसा निकालना कठिन कार्य था। कैसे भूलते, पीएफ़ ऑफिस का पहला दिन और दीवाल पर टंगी क्लेम-फ्लो-चार्ट! इनकी समझ और नजर को चिढ़ाता एक-एक एलियन शब्द --eKYC, UAN, OTP, CAPTCHA, PAN, IFSC... सांस गले में ही अटक गई थी।

पैसा निकालने के लिए सबसे पहले चाहिए UAN नंबर पोर्टल ID, फिर आधार से लिंक UAN, तत्पश्चात PAN नंबर। फिर फॉर्म 19, फॉर्म 15जी, फॉर्म-31, फॉर्म 10C, फॉर्म 10डी,.....। उसके बाद 25 से 30 दिन का लंबा वेरिफिकेशन। पढ़े-लिखे बलशाली इंसान के लिए भी इसे झेलना दुष्कर था, बेचारे धनीराम की उम्र तो अब ढल रही थी। बीच-बीच में पीएफ इंस्पेक्टर बनर्जी साहब की बेरुखी व झुंझलाहट-- "पीछे दीवाल पर टंगी क्लेम-फ्लो चार्ट नहीं देखा क्या ? चले आते है मुँह उठा के, बिना कागज-पत्र!" इनकी बेरुखी तो आशीर्वाद थी।बगैर इसके, आज तक किसी को पैसा मिला भी है क्या?

चिंतित धनीराम भारी कदमों से चलते हुए जब घर पहुँचे तो रात्रि के आठ बजे चुके थे। पत्नी धनवती और बेटी सुंदरी बेसब्री से इंतज़ार कर रहे थे। पिता के चेहरे पर मुस्कान देख, सुंदरी का हृदय बाग-बाग हो गया। कई दिनों की भाग दौड़ के बाद, आखिरकार प्रोविडेंट फ़ंड का पैसा हाथ आया था । पूरे सत्तर हज़ार रुपए लाडली बेटी के हाथों मे रखते हुए धनीराम बोले —"लड़के वालों की मांग पूरा करने का समय आ चुका है।"

परंतु थकान और भागदौड़ से शरीर सुस्त व भारी। आधी रात होते-होते पूरा बदन आग से तपने लगा। सुबह बुख़ार के साथ-साथ खांसी और सर-दर्द। अगले दो दिनों में स्वाद और सुगंध की पहचान भी शेष। कभी गिलोय का काढ़ा, तो कभी गरम पानी। कभी प्राणायाम तो कभी योगा अनजानी। धनवती और सुंदरी कुछ समझ न पाते। बस अलग कमरे में इन्हे सुलाते। जब बढ़े गले की ख़राश तब दो -चार गार्गल ही आश। परन्तु बेटी रहती हर-पल इनके पास।

चौथे दिन सांस की तकलीफ। हालात नाजुक। दो घंटे के बाद भी एंबुलेन्स का अता-पता नहीं। प्रतीक्षा नहीं परीक्षा की घड़ी थी!एक-एक सांस के लिए संघर्ष करते पिता को सुंदरी कैसे छोड़ सकती थी? संक्रमण ने तो पहले ही इंसान को इंसान से दूर कर दिया था। ऐसे मे सशक्त बेटा बनने कि जरूरत थी दुर्बल बेटी नहीं।

पड़ोसी के हाथ-रिक्शा पर पिता को बैठा, दौड़ पड़ी शहर की सड़कों पर! हिम्मत और सांत्वना देते हुए। अगले ही पल सरकारी अस्पताल के दरवाजे पर। सर्वत्र चीख-पुकार। दर्जनों मरीज दरवाजे पर दर-ब-दर ठोकर खाते हुए। न डॉक्टर, न नर्स, न बेड। प्लास्टिक की थैलियों मे पड़ी लावारिस लाशें। आँखों में आँसू और कलेजे पर पत्थर रख इन लाशों को दूर से ही देखते स्वजन। मरीजों की दशा देख सुंदरी का कलेजा मुंह को आ गया। दिल बैठने लगा। अधूरे सांस मे जीवन जीने की पिता का संघर्ष हृदय विदारक था। कैसे छोड़ सकती थी उन्हे यूँ ही मरते! अब तो कठोर निर्णय का वक्त था। पिता को बचाने के लिए मन सशक्त था। यह जानते हुए भी कि पिता के जीवन भर की गाढ़ी कमाई लूट जाएगी। उसकी शादी का सपना टूट जाएगा। उसके सामने बस एक ही रास्ता था --"प्राइवेट नर्सिंग होम!"

पड़ोसी बापी दास की मदद और सुंदरी की गुहार रंग लायी । शीघ्र ही पिता को प्राइवेट नर्सिंग होम में भर्ती करायी।

आज पाँच दिन बाद धनीराम का नर्सिंग होम से डिस्चार्ज था। बिल भुगतान के बगैर मरीज का डिस्चार्ज कैसे? हाथ में नोटों की थैली लिए सुंदरी कैश काउंटर की ओर चल पड़ी। पूरे एक लाख बयालीस हजार छयालीस रुपए का बिल। दिल सहम गया। 1260 रुपए का दवा-दारू तो समझ मे आ रहा था पर बिल के कई रहस्यमयी व जादूई तत्वों से अंजान थी। इन तत्वों से बिल की राशि लाखों में। आइसोलेशन वार्ड,आरटी-पीसीआर टेस्ट, आईसीयू, वेंटीलेशन, पीपीई किट, डिसिनफेकटेंट, निटराइल ग्लोवस, N95-मास्क, थेरेपी....। सुंदरी को इन शब्दों से क्या लेना- देना। बिल की राशि कुछ कम हो जाय, तो सुकुन मिले। पर सौगत दास की मिन्नतें भी बेअसर!

निरुपाय, शादी के लिए रखे सत्तर हज़ार और संजोकर रखे सोने की ज्वेलरी बेच कर हॉस्पिटल का बिल चुकता कर दी। उसे तो बस खुशी थी कि उसके पिता की जान बच गयी थी। पिता को पुनः सामने देख आँखों मे आँसू छलक पड़े। पुत्री को रोते देख धनीराम भी रो पड़े।

****

2. "एग्जिट कॉन्फ्रेंस"

लोग सोचते हैं कि जिस नौकरी मे ज्यादा टूर (Tour) होता है, वहाँ सरकारी बाबू सदैव सुखद व स्वातंत्र्य कार्य-शैली की आकांक्षा से गदगद होते हैं। नौकरी भी, भ्रमण भी! मनमोहक, रोचक, और सत्कारपूर्ण पल ! मन सर्वदा पुलकित! पर जब नौकरी ही भ्रमणपूर्ण हो, तो इसमे बाबूलोग क्या कर सकते हैं! सरकारी आदेश तो मानना ही पड़ेगा! यह भी सही है कि कुछ सरकारी बाबुओं के लिए भ्रमण जबर्दस्त आकर्षण का विषय-वस्तु होता है। कई बाबुओं की तो जीवन-लीला इसके बगैर अधूरी-सी होने लगती है। पर इससे पारिवारिक जीवन ज्यादा प्रभावित होता है। एक समय के बाद, इस भ्रमण से बीबी-बच्चों की मनःस्थिति व्यथा का रूप धारण कर लेती है। एकाकीपन और तन्हाइयों मे गुजरती नन्हें-मुन्ने की अनमोल जिंदगी बेसुध सी हो जाती है। कभी-कभी चाहते हुए भी, अपनों की इच्छा पूर्ण न कर पाना बाबुओं की भी मजबूरी होती है... और पापा की प्यारी लाडली पल-पल प्रतीक्षा में ही रह जाती है... मेरी यह रचना बाबुओं के तन्हा परिवार को समर्पित ....

आखिरकार, समझा बुझाकर हाकिम साहब ऑफिसियल टूर(tour) पर एक महीने के लिए दिल्ली रवाना हुए। सात साल की मरियम का रो-रो कर बुरा हाल था। बार-बार एक ही बात दुहरा रही थी-- 'अब्बू ! मत जाइए। इस बार मत जाइए! रमजान के महीने में भी कोई बाहर जाता है क्या?" पर अब्बू की भी अपनी मजबूरी थी-- बेचारी मरियम को क्या पता।

सरकारी कार्य में बाहर-भीतर तो होते ही रहना पड़ता था। उत्तर से आये दक्षिण चल दिए, पूरब से आये तो पश्चिम चल दिए। एक ओर लगातार भ्रमण तो वही दूसरी ओर घर-परिवार से महीनों, कोसों दूर। । ऑडिट-निरीक्षण का कार्य-- एक सरकारी कार्यालय का एग्जिट कॉन्फ्रेंस(अंतिम मीटिंग की अब कार्य शेष) हुआ नहीं कि दूसरी जगह की एंट्री कॉन्फ्रेंस (पहली मीटिंग की अब कार्य शुरू) माथे पर। बैग हमेशा तैयार। थैला-ढोवक प्रजाति ! यायावर जिंदगी!

अब्बू की अनुपस्थिति में मरियम की उदासी और बेचैनी बहुत बढ़ गयी थी। वैसे फोन से आये दिन बातचीत होती रहती किन्तु सशरीर स्नेह और जिंदादिली की बात कुछ और ही है।

त्योहार के समय हज़ारों ख़्वाहिशें। पड़ोसी के भरोसे कब तक जिया जाए। नए कपड़ें सिलवाना, सेवइयां बनाना, बाजार करना, ईदगाह जाना इत्यादि, पर अब्बू के अलावा कौन कर पायेगा।

मुश्किल भरा माह अब ख़त्म हो चला था। अब्बू के आने का दिन भी आ गया था। मरियम के चेहरे की उत्सुकता और ख़ुशी साफ़ दिख रही थी। कॉल बेल बजते ही मरियम सरपट दरवाजे की ओर भागी परन्तु अब्बू का कोई पता नहीं। सुबह से लेकर अब तक, दर्जनों कॉल बेल से मरियम को निराशा ही हाथ लगी थी। कभी अब्बू के दोस्त जुमन चाचा, तो कभी पड़ोसी रुबिया चाची। कभी दूधवाला तो कभी मौलवी साब। कभी इस्तरी वाला तो कभी कुछ फ़कीर दरवाजे पर दस्तक़ दे गए थे।

मरियम कुछ समझ नहीं पा रही थी। दिन चढ़ आया पर अब्बू का अभी तक कोई पता नहीं। मन में कई तरह के ख्याल भी आ रहे थे-- "ट्रैन तो सुबह में ही आ जाती है। कहीं देर तो नहीं! कहीं इस बार भी बकरीद के जैसे, आने का टिकिट कैंसिल तो नहीं करा लिए! कहीं कोई घटना तो नहीं घटी! मन मे बुरे ख़्याल भी आ रहे थे। पर नन्ही जान आखिर सोच भी क्या सकती उसे तो बस अपने अब्बू की चाहत थी। काश! इंतज़ार की भी हद होती!

जब से चाँद का दीदार हुआ, तब से सब जगह उत्साह और उल्लास का आलम था। सलमा अपने अब्बू और अम्मी के साथ तो दो दिन पहले ही दुबई से तशरीफ़ ले आयी थी। उम्मीद नहीं थी, पर अब्दुल भी खाड़ी देश से फिर आया था। नगमा के अब्बू भी अरब से कल ही घर पहुँचे थे। पंजाब से सब पहले ही आ चुके थे । सलमा, नगमा, लैला, हामज़ा, कलमा पड़ोस में उछल कूद करते और अपने अब्बू के कंधे चढ़ मेला देखने के सपने सजाते। सब ओर चहल-पहल, नया जोश। नूरनगर में रौनक देखते ही बनती। मरियम भी अपने अब्बू के कंधे चढ़ मेला देखने के सपने सजोये हुए थी। बेचारी पिछले तीन ईद बिना अब्बू के ही मनायी थी।

फिर कॉल बेल की आवाज। नटखट, चंचल और अब्बू की इकलौती लाडली दरवाजे की ओर तेज़ी से लपकी—“अब्बू! अब्बू!” पर अब्बू का कोई अता-पता नहीं। हाँ-- पड़ोस के बच्चे ईदगाह जाने की तैयारी में दरवाजे पर दस्तक दिए थे। सब नए कपड़ों में खिल रहे थे। सलमा की लाल फ्रॉक तो नगमा की नीली चूड़ीदार पंजाबी। सब के सब सुन्दर हरे रंग के हिज़ाब में एकदम चाँद का टुकड़ा लग रहे थे। पूरा दिन यही सिलसिला चलता रहा।

मरियम की बेचैनी से तंग आकर आखिरकार उसकी अम्मी से रहा नहीं गया। किचेन से बोली-- " तेरे अब्बू नहीं आ रहे हैं। कल रात तेरे सोने के बाद फोन आया था। कह रहे थे “परसों कोई मीटिंग है बड़े अधिकारी संग! एग्जिट कॉन्फ्रेंस! टिकट कैंसिल करा लिये हैं।"
बेचारी मरियम को ‘एग्जिट कॉन्फ्रेंस’ जैसे भारी भरकम शब्दों से क्या लेना देना! उसे तो बस इंतेजार था अपने अब्बू की जो हर बार कहते--रमजान के महीने में घर पर रहेंगे, साथ ईदगाह और मेला देखने जायेंगे-- पर महीनों बाद भी घर से कोसों दूर, ऑफिसियल टूर पर! ये कैसी नौकरी! बकरीद भी बिना अब्बू!अब ईद भी बिना अब्बू !

बेगम साहिबा कि बढ़ती अर्थराइटिस। उठना- बैठना मुश्किल। ऐसी हालत में त्यौहार की खुशहाली बिना शौहर के डंक मारती। मन ही मन सोचती—“नगमा ज्यादा खुशनसीब है, उसके अब्बू ईद-बकरीद में परिवार के साथ तो हैं। रूपये कमाना ही तो जिंदगी नहीं है!”

मरियम ने भी इस बार ठान ली थी की अब्बू नहीं तो ईद नहीं। दरवाजे पर बच्चे लाख शोर मचाते रहे परंतु साथ जाने से बिल्कुल मना कर दिया।

****

3

सोशल मीडिया हम सब की जान है। आधुनिक समय का एक हथियार। कोई सामग्री पोस्ट किए नहीं कि बार-बार मोबाइल खोल हम देखने लगते है, मन में बेचैनी-सी हो जाती है कि इसे कितना लाइक मिला। हम में से कितने तो सिर्फ पाठक हैं, कुछ अच्छे लेखक और रचनाकार भी हैं। कोई -कोई अपनी सुंदर छवि भी फेसबुक पर पोस्ट कर खूब लाइक बटोर लेता है। जबकि कुछ 'पोस्ट' दो-चार लाइक के लिए मुंह जोहती है। ऐसे ही अनुभव को चित्रित करती मेरी रचना-

"शर्मा जी की व्यथा"

शर्मा जी को फेसबुक पर पोस्ट डाले आठ घंटे से ज्यादा बीत चुका था। पर अब तक सिर्फ एक ही लाइक मिला था। न कोई थम्बस-अप, न कोई ताली। ऐसे में चिंता स्वाभाविक थी। "फ़ोटो तो सुंदर थी! स्वर्णाभूषण भी चमक रहे थे! फिर भी कमैंट्स नदारद !"--स्वयं से प्रश्न किये। व्यग्र व उदास भाव से साहब कभी मोबाइल का नेटवर्क चेक करते तो कभी इंटरनेट।

मन की बढ़ती व्यथा को रोक पाना अब मुश्किल था। मोबाइल बंद कर पॉकेट में छिपा ली।

देह का दुख होता, तो किसी से कहते, बताते! पर ऐसी दुखड़ा किससे सुनाये? आखिर इस पीड़ा का ईलाज भी क्या था? शर्माजी ! अंतर्मुखी स्वभाव के धनी। असल जिंदगी में बहिर्मुखी दुनिया से कुछ लेना-देना नहीं। न जुलूस न धरना। न कैंडल मार्च न पुलिस से लड़ना! पर सोशल मीडिया के बब्बर शेर! विशेष कर फेसबुक व व्हाट्सएप में गहरी अभिरुचि। हाँ! कभी-कभार ट्वीटर पर भी अंगूठा टीप-टीपा लेते! सोने की अंगूठी और चमचमाती चेन से हर समय अलंकृत। लोग इन्हें प्यार से सोनापुर वाले शर्मा जी बुलाते!

दस मिनिट बाद पुनः मोबाइल पॉकेट से बाहर निकाले। बाएँ हाथ में थामे, श्याम-पटल पर दायी तर्जनी तेजी से टीप-टीपा कर कुछ टेढ़ी-मेढ़ी लकीर बनाई। अंगुलियों की रगड़ पड़ते ही विचित्र जादु सा हुआ और सुस्त पड़ी स्क्रीन जगमगा उठी। अगले ही पल आंखों के सामने दर्जनों मन लुभावन रंग-बिरंगे-गोल-चौकोर-लघु-चित्र(icons)! ऐसे कुलबुलाते चित्रों से स्क्रीन का कोना-कोना लबालब। "नीला, हरा, लाल, गुलाबी और चितकबरा! देख-देख इन चित्रों को, इनका मन हो जाय बेसब्र!"

चालीस के पार, पर गज़ब की पैनी नजर। साहब की दृष्टि-विभेदक क्षमता भी गजब की! दर्जनों एक जैसे दिखने वाले रंगीन चित्रों में झट से नील-लघु-चित्र(फेसबुक) ढूंढ पाना, इनके लिए कोई कठिन कार्य नहीं। नील-चित्र पर दाएं अंगूठे से कोमल स्पर्श। और लीजिये चित्र-पट खुल गया। सबसे पहले इनकी उद्विग्न दृष्टि, ऊपर दायी तरफ, कोने मे लटकती घंटी (नोटिफ़िकेशन) पर गयी। घंटी बिल्कुल सुस्त व बेजान । न कोई हलचल न कोई गोला! घंटी पर कोई लाल गोला दिखे तो मन प्रसन्न हो जाय! पर बेचारे की नसीब उतनी जानदार कहाँ! बेरहम दुनिया और निर्दयी फ्रेंड्स! सोचे थे सैकड़ों लाईक्स मिलेंगे। पर किस्मत की लकीर कौन बदल सकता? पुनःउदास हो गए।

मित्रों के पोस्ट पर सैकड़ो लाइक यूहीं बरसा देने वाले शर्माजी आज खुद एक-एक लाइक के लिए तरस रहे थे। न जाने कितने थमब्स-अप और ताली जैसे भावों को बिन मोल हवा में उड़ा दिये होंगे। गिनती तो छोड़ ही दीजिये! एक सच्चे पाठक की भूमिका में सदैव तत्पर। पोस्ट नापसंद होने पर भी दोस्ती की लाज रखते, दो टूक टिप्पणी कर ही देते ।

अब पिछले दिनों की ही बात है। चित्र-पट खुलते ही, पड़ोसी वर्मा जी का चकमक चित्र, नजर के सामने । चित्र देखकर बेचारे का दिल दंग रह गया! कोरोना काल मे ऐसा भेष बनाए थे कि सिर्फ उनकी आंखे दिख रही थी। एक दम अजूबा लग रहे थे। मानो साक्षात बैट-मैन! पर मन के भावों को धनात्मक शब्दों में टिप्पण करना कोई इनसे सीखे—"ब्यूटीफूल! कीप इट अप! वर्मा जी!'' पलक झपकते ही वर्मा जी का जबाब भी आ गया। लगा साहब कुछ भला बुरा कहेंगे। पर वर्मा जी के "लालका-लाइक" इनके मन को खुशियों से तर-ब-तर कर दिया।

आज एक थम्बस-अप व ताली के लिए लालायित हैं। खुद की पोस्ट पर इतनी बड़ी अवमानना देख इनका दिल बैठे जा रहा था। काल्पनिक दुनिया के आभासी मित्र! मुँह फेर लिए! ऐसा सलूक!"—मन ही मन बुदबुदाये।

मित्रगण की पोस्ट चाहे कैसी भी रही हो,क्या मजाल कि इनके लाइक या टिप्पणी से बच जाय। हर समय अपना फर्ज बखूबी निभाते। चाहे होली का पोस्ट हो या दिवाली का! कोरोना का पोस्ट हो या कंगाली का! बाप-रे!, दंतचियार!, मुँहबउ!, और दिल-बैठा! --जैसे लाइकों की जबर्दस्त समझ। कब कौन-सा टीपना है, लोग इनसे पूछते। दो पंक्ति के टिप्पण में, ऐसे कई भाव देकर कॉमेंट सजाते। सुदूर बैठे दोस्तों का खूब मन बहलाते।

कई बार तो करीबी दोस्त के अटपटे पोस्ट भी खुल कर शेयर करते । इतना नहीं, किसी फ्रेंड का बर्थडे रिमाइंडर आया नहीं की, झट से विश(wish) भेज देते। कभी-कभी तो एडवांस में भी! कहीं ऐसा न हो की अगले दिन चूक जाये! मित्र महोदय को भले ही याद न हो, पर इनकी अग्रिम विश उन्हे चकित जरूर कर देती। हाँ! ऐसा कर वे कई बीबीयों के सर्वप्रथम विशर(wisher) होने की उम्मीद पर पानी जरूर फेर देते। इसका पाप तो उन्हें लगना ही था। "पापी! कलंकी ! पति-पत्नी के बीच फूट डालते शर्म नहीं आती!"--पत्नियों की श्राप से कैसे बच पाते।

मरता क्या न करता! मन बहलाने के लिए नील-लघु-चित्र से हरा-लघु-चित्र(व्हाट्साप) की तरफ लपक लिए। अंगूठे से पुनः कोमल स्पर्श और सामने थी अजीबो-गरीब सरकती दुनियाँ। अनमोल ज्ञान के पिटारों से भरी हुई! इन पिटारों मे सबसे पहले था "शुभप्रभतिया संदेश"— सुंदर मनमोहक पुष्प! पुष्प की पंखुड़ियों पर सुलिखित दार्शनिक विचार! और ऐसे विचारों से लबालब दर्जनों संवाद।
शुभकामना तो ठीक है, पर कुलबुलाते दार्शनिक विचारों से शर्माजी खिन्न हो जाते। भेजने वाले को जी-भर मन-ही-मन कोसते --"नालायक! सुकरात की औलाद! चाणक्य के वंशज! खुद तो इन विचारों से कोसों दूर! पर ज्ञान की गंगा में निसहाय पाठकों को डूबा-डूबा कर मार डालेंगे!" शुभप्रभतिया संदेश खत्म होते ही मजेदार जोक्स वाले संदेश। गर वयस्क जोक हो, तो पढ़ कर मंद-मंद मुस्कुराते। बिन टिप्पणी रह न पाते! कभी दो दाँत दिखाते तो कभी तीन-चार ताली बजाते। गर खोयी बच्ची का मैसेज आय तो इनकी आँखों में मोटे-मोटे आँसू भर जाय! भावुक इतने की बिना शेयर किए, दो पल भी रह न पाय। पर कम्यूनल संदेश पर कुछ बोल न पाते।

उदास मन को पढ़ पाना सबके बस की बात नहीं। बीबियों को इससे क्या लेना-देना। सोशल मीडिया का पहला अध्याय पूर्ण कर, कीचन में कदम रखते ही बेचारी बेगम साहिबा झुँझलाते हुए बोली—"खाली मोबाईले देखिएगा का? नौ बज गए हैं! बच्चा संभालिए! नहीं तो खाना बनाइये! मुझसे दोनों काम नहीं होगा?"

बेगम साहिबा का गुस्सा देख शर्माजी मोबाइल को लंबे समय के लिए स्विच-ऑफ कर बच्चों को पढ़ाने बैठ गए। पोस्ट की शांति तो मन में पहले से ही अशांति उत्पन्न कर दी थी। बच्चों पर ध्यान किसका? थोड़ी देर बच्चों के साथ पढ़ने-पढ़ाने का बहाना करते रहे। पर अक्सर चिर-मुद्रा मे खो जाते।

मन की मुराद भापने में छोटा लड़का चिंटू सबसे तेज। मौका मिलते ही पानी-पीने के बहाने वहाँ से खिसक लिया। थोड़ी देर और पढ़ने-पढ़ाने की कसरत चलती रही। बड़ा लड़का भी शातिर, मौके की तलाश मे, पेशाब करने के बहाने चुपके से उठा, माँ की मोबाइल उठाई और दूसरे कमरे में छिपकर मोबाइल गेम 'पब्जी' शुरू।

कीचेन मे व्यस्त बेगम साहिबा की खीज बढ़ गयी थी ! बच्चों को फटकारते हुए बोली—"होमवर्क कंप्लीट नहीं हुआ तो बाप-बेटे का हुक्का-पानी बंद!" चिर-मुद्रा से बाहर निकल, शर्मा जी ने दोनों बेटों को आवाज लगाई। पर कोई फायदा नहीं। दोनों बेटें मोबाइल गेम में इनसे ज्यादा मग्न हो गए थे।

पूरे दो घंटे बाद मोबाइल स्विच ऑन किए। इस बार लटकती काली घंटी पर एक चमकता हुआ लाल गोला दिखाई पड़ा। मन खुशी से झूम उठा। देखने के लिए गोले पर क्लिक करने वाले ही थे कि तभी पड़ोसी चोपड़ा साहब की सुंदर आकर्षक छवि दिखाई पड़ी--152 लाइकस, 53 कमेंट्स,12 शेयर, पोस्ट अपलोड टाइम था महज तीन घंटा पहले! दिल बैठ गया। नेट था नेटवर्क भी था! सजग थे सक्रियता भी थी! पर लाइक मिलना दूर की बात थी। मन ही मन ज़ोर से चिल्लाते हुए बोले—"ये कैसी दोस्ती! मेरे पोस्ट में क्या कमी थी! ये कैसी सत्कार! इतनी बड़ी दुत्कार!"

पूरे 12 घंटे बाद कुल मिलाकर तीन लाइक मिले थे! भाग्यशाली पसंद-कर्ताओं के नाम थे—चंदु बनिया(जिसका उधार लिए थे), चुन्नी बाबू (जिसको उधार दिये थे) और तीसरा लाईक खुद बेचारे शर्मा जी का ही था। अनायास ही इनके मुंह से निकाल गया – "ओ तेरी... फेसबुक तो पक्षपात करता है! घोर पक्षपात!"
इनके लटके चेहरे को देख, बेगम साहिबा से रहा न गया। झुँझलाते हुए बोली—"फेसबुक-तेसबुक बंद कीजिये! किसने कहा था बंदर-जैसा फ़ोटो पोस्ट करने को! फोटो खींचने से पहले मास्क तो उतार लेते! चंबल के डाकू-जैसा फोटो पर लाइक कैसा!"
श्रीमती जी की साक्षात टिप्पणी सुन सन्न रह गए। मन की व्यथा स्वतः कम हो गयी। गुस्सायी बेगम को मनाते हुए शर्माजी ने वादा किया कि अब वे कभी भी फेसबुकिया पोस्ट नहीं करेंगे। पाठक थे, पाठक ही रहेंगे। प्रेषक बन, बेकार के पचड़े में अब न पड़ेंगे....

****

(4)

एक समय था जब गाँव सादगी के प्रतीक थे। सर्वत्र शुद्ध हवा और कोलाहल मुक्त जीवन था। परंतु आधुनिकता की वयार ने ग्रामीण जीवन की सादगी को निगल लिया । शहरी आबोहवा से गाँव अब अछूते नहीं रहे । गाँव, शहरी तौर तरीकों से भिन्न होता है, अब थोड़ा अटपटा लगता है। शादी ब्याह हो या कोई दूसरा फंक्शन सारे सज्जो-सामग्री शहरी जैसे ही होते हैं। स्मार्ट टीवी, मोबाइल, गाड़ी, फैशन अब ग्रामीण जीवन के लिए अजूबा कैसे? सादगी और शांति से दूर होती ग्रामीण जीवन शैली पर एक कोशिश .....

"शहनाई बजेगी। क्या मधुर संगीत और तान होती है। आत्मा खिल जाती है। नयी पीढ़ी क्या जाने सुर संगीत?" पायल के दादाजी गर्व से बोले।

“तुरही-शाहनाई और आज कौन पूछता है?” चन्दर बड़े ही अभिमान पूर्ण दादा जी को जबाब दिया। “शहर की प्रसिद्ध 'जय हिंद बैंड पार्टी' वाले ही आएंगे! रंग-बिरंगे परिधानों से सुसज्जित....”! चन्दर की बात को बीच में काटते हुए छोटा भाई चिंटू गरजा--"लोग क्या कहेंगे? दोस्तों के बीच मेरी नाक कट जाएगी। डीजे बिन सब सुन्न। आखिर सामाजिक प्रतिष्ठा भी तो कोई चीज होती है?"

दादाजी गुस्से पर काबू रखते हुए बोले-" शादी ब्याह में डीजे का क्या काम? बेकार का शोर-गुल। शहरी संस्कृति का गांव के जीवन से क्या लेना देना?" चिंटू के पिता जी भी सुर में सुर मिलाये—“ हाँ! हाँ! ग्रामीण संस्कृति में डीजे का क्या काम?”

चिंटू की बहन पायल की शादी में क्या बजेगा इसको लेकर परिवार में कई दिनों से बहस चल रही थी। लड़का- पक्ष से भी डीजे बजाने की मांग आ चुकी थी। दरवाजे पर दूल्हे के शहरी दोस्त दो ठुमके न लगाए, तो बारात का मजा कैसा ? आखिरकार लंबी बहस और आधुनिकता की चकाचौंध में चिंटू विजयी हुआ। डीजे बजाने पर मुहर लग गयी।

दिल के मरीज दादाजी नयी पीढ़ी को अपनी बात समझा पाने में विफल रहे। थक-हार कर अपने कमरे में लौट आये। हमेशा से शोरगुल और ध्वनिप्रदूषण के खिलाफ रहने वाले दादाजी नहीं चाहते थे कि पर्यावरण के साथ- साथ पड़ोसियों की भी मुश्किलें बढ़ें। परन्तु, नयी युवा पीढ़ी की सोच के आगे बेबस और लचार थे।

बारात की स्वागत की तैयारी पूरी हो चुकी थी। दरवाजे पर वृहद पंडाल जिसमें खूबसूरत फूलों से सजी वरमाला स्टेज । स्टेज पर दूल्हे-दुल्हन की चमचमाती शाही कुर्सी। स्टेज के बाएं तरफ चार विशालकाय साउंड बॉक्स। साउंड बॉक्स के सामने एक छोटी-सी डांस कोर्ट। डांस कोर्ट में झूमते गांव के बेसुध किशोर-बच्चें। बॉक्स के पीछे डीजे की सज्जो-सामग्री। और उसके पीछे डेस्क पर बैठा ठिगना कद का मरियल डीजे "गोलू"।

पिछले दिन से ही गोलू अपनी उपस्थिति सबको पिट पिट कर बता चुका था। वाह! क्या फाड़ू आवाज थी डीजे की ! आसमान तक गूंजने को बेवस! बादलों की गरज फीकी ! बेजान व सूखे पत्तों मे भी गज़ब की संजीदगी! पड़ोस के कच्चे मकानों में न तो भूचाल की स्थिति।

डीजे आने से चिंटू की खुशी का ठिकाना न था। आखिर उसका नाम भी अब दोस्तों के बीच सुमार जो होने वाला था। फरमाइशी गीतों का दौर जारी था। डीजे गोलू की अंगुली अपना जलवा बिखेर रही थी। हर्षोल्लास और बोधका में लीन चिंटू और उसके दोस्तों पर ध्वनि-प्रदूषण, नियम-कानून का कोई असर नहीं। पड़ोसियों की परवाह नहीं। दादाजी के निहोरा और आग्रह भी बेअसर था।

रात के ढाई बजे चुके थे। पूरा वातावरण डीजेमय था। वातावरण भोजपुरिया संगीत से आच्छादित--- "राजा-राजा करेजा में समा जा...! लगावेलु तू जब लिपिस्टिक...! चिंटू अपने दोस्तों और बारातियों के साथ डीजे के ताल पर मस्तमगन झूमना जारी रखे हुए था। बारात की हुल्लड़ और खुमारी सब पर भारी पड़ रही थी। ठुमके पर ठुमका! क्या मजाल कि कोई चिंटू से डीजे बन्द कराने की अपील करे!

डीजे की हरेक ताल दादाजी के दिल को झकझोर के रख दिया। प्रत्येक तान बड़े हथौड़े के भाँति दिल पर प्रहार कर रही थी। लगता था कलेजा निकल कर बाहर आ जायेगा। बस इंतज़ार थी किसी तरह कुछ क्षण के लिए डीजे बजना रूक जाय तो जान में जान आये। डीजे बन्द कराने की दादाजी की अपील कौन सुने? युवा पीढ़ी के सामने दादाजी मजाक बन के रह गए। शोरगुल और हो-हल्ला में दादाजी की सुध लेने वाला था भी कौन ? उनकी स्थिति बिगड़ने लगी। औषधि भी दो दिन से नदारद थी। आखिर पुराना शरीर कब तक निर्दयता को सहता? डीजे की बेरहम ध्वनि के साथ-साथ दादाजी की हृदय गति बढ़ने लगी। सीने में तेज दर्द उठा। कराहते-कराहते दादाजी चारपाई से नीचे गिर पड़े। मदद की गुहार लगाई पर दादाजी की चीखें डीजे की अथाह गूंज में दब के रह गयी। देखते ही देखते हृदय गति सदा के लिए बंद हो गई।

डीजे बंद होने से पहले ही दादाजी की सांसें रूक गई। पायल की विदाई के साथ-साथ दादाजी की भी अंतिम विदाई थी। दूर-दूर से लोग अंतिम दर्शन के लिए आ रहे थे और दादाजी की आत्मा की शांति की दुआएं मांग रहे थे। साथ ही लोग चिन्टू और उसके परिवार को सांत्वना भी दे रहे थे। आहत चिन्टू को कुछ सूझ नहीं रहा था। जिस दादाजी की गोद और स्नेह में पला-बढ़ा, आज वो उससे दूर जा चुके थे। जिनकी अंगुली पकड़ कर चलना सीखा, अब बेजान पड़े थे। रोते-बिलखते चिन्टू को दादा जी की मिन्नते बार-बार याद आ रही थी।

लोग समझ रहे थे कि दादाजी की मृत्यु चरपाई से गिरने से हुई थी परंतु चिन्टू सच क्या है जनता था। चिन्टू चाहता तो दादाजी बच सकते थे। परंतु झूठी दिखावा और शान ने उसकी आंखों पर पट्टी डाल रखी थी। दादाजी की मिन्नते बेअसर होती गयी और चिन्टू का झूमना जोर पकड़ते गया। चिन्टू जब होश में आया तब बहुत देर हो चुकी थी। शांतिप्रिय दादाजी की जिंदगी सदा के लिय शान्त हो चुकी थी। आखिरकार आधुनिकता की चकाचौंध ने एक इंसान की बलि ले ली थी।

क्या सचमुच चिन्टू जीत गया था ? आज भी यह एक यक्ष प्रश्न है हमारी झूठी शान और बाह्याडम्बर के प्रति।

****

(5)

अमरूद, जामुन, कुम्हड़ा, सहजन और न जाने ऐसे कितने फल-सब्जी हैं जिनका शहरों में क्रय-विक्रय बड़े ही चाव से किया जाता है जबकि गाँवों में इनका कोई भाव नहीं होता! कारण कई हो सकते हैं। आज भी बहुतेरे फल व शाक-सब्जी है जिसका क्रय-विक्रय गाँवों में विरले ही किया जाता है।

काफी दिनों बाद, श्रीमतीजी की मांग पर मुझे कुम्हड़ा खरीदने का मौका मिला, दाम सुनकर हैरानी हुई। लगा कुम्हड़ा महोदय, आलू-प्याज के साथ, कदम से कदम मिलाकर अपना भाव बनाने में लगे हुए हैं। निश्चय ही, यहाँ भी बिचौलिये का प्रभुत्व रहा होगा। उपज का उचित दाम मिल जाये, इसके लिए किसान आंदोलन पर आंदोलन किए जाता है। सच में, जिस तरह से कुम्हड़ा का दाम नयी उच्चाइयाँ छू रहा है, उससे लगता है कि महोदय अब बलशाली, भावशाली व गुणशाली हो गए है। कुम्हड़ा बिक्री से संबन्धित एक संस्मरण ---

मेला

अस्सी का दशक। मैं करीब छह-सात बर्ष का और मेरे भाई साहब मुझसे दो साल बड़े। गाँव के पास ही चाँदपुर नामक एक छोटा-सा चौराहा जहां नागपंचमी के शुभ अवसर पर हरेक वर्ष मेला लगता। खिलौने और मिठाई के दुकान सुबह से ही सज जाते। दोपहर आते-आते, मेले की रौनक आसमान छूने लगती। हम में भी मेला देखने की उत्सुकता जागृत हो उठी। पर गुल्लक तो पिछला दशहरा से ही खाली पड़ा था, बिन पैसे मेला जाते कैसे?

पिताजी की तंगी और आर्थिक हालात से हम वाकिफ थे। माँ के पास कौन पैसे के पेड़ लगे थे? ऐसे में दादी माँ ही अंतिम सहारा थी जिसके पास हर उदासी और निराशा को दूर करने का अचूक बाण था। वैसे कुछ खजाना तो नहीं गड़ा हुआ था जिसे बेच कर, हमारे मेले का शौक पूरा किया जाय, परंतु घर गरीब हितैषी खजाना "कुम्हड़ा" से जरूर भरा हुआ था। कुछ बाड़ी में लटके रहते तो कुछ घर की छावनी पर सदैव गुमसुम पड़े रहते थे। बस क्या था! सिर पर रख दो कुम्हड़ों की एक टोकरी, चल पड़ी दादी हमें मेला दिखाने।
जैस ही मेला पहुंचे, कुम्हड़ों की टोकरी देख छगन हलवाई की आंखे चौधियां गयी। "मिठाई के लिए उपयोगी!" दादी से सौदा मोल लेने की इच्छा जताई— "दो रूपये से अधिक एक पाई नहीं दूंगा!" पर, पाँच-पाँच किलो की सामग्री, मिट्टी के भाव कोई कैसे दे। दादी एकटुक जवाब दी--"मेहनत मजूरी का तो लिहाज़ करो! एक का पाँच रूपये से कम एक पाई न लूँगी!" महंगा भाव सुनते ही छगन हलवाई का मुंह उतर गया। तंज़ कसते हुए बोला—" भला, कुम्हड़ा सोने के भाव कब से बिकने लगा!" और इस तरह, सौदा तय होते-होते रह गया। मेला पहुँच, हम तीनों अभी पूरी सांस लेने की कोशिश ही कर रहे थे कि मेला समिति के लोग, चंदा उगाहने के लिए आ धमके।--"ऐ बुढ़िया, निकाल चंदा"! दादी गिड़गिड़ाते हुए बोली—"अभी तो सौदा बिका ही नहीं! चंदा कैसा?" पर समिति के लोग, तनिक भी मानने को तैयार नहीं। "हमलोग तुम्हारे सामान की बिक्री तक बैठे नहीं रहेंगें! चल निकाल चवन्नी! "निरुपाय, दादी अपनी पल्लू मे बंधी एकमात्र चवन्नी का बलिदान कर, समिति के लोगों को भेंट कर दी।

अधिक पैसे की उम्मीद, हम तीनों को बांधे रखी। मैं और मेरे बड़े-भाई, दादी के पास बैठ, आते-जाते चेहरे को एक-टक निहार रहे थे। कुछ पैर, चलते-चलते, एक पल के लिए हमारे सामने रुक जाते, जबकि कुछ सीधे निकल जाते। कुछ नजरें, सामने रखी कुम्हड़ों पर जाती, आश्चर्यचकित हो जाती, मानो कह रही हो "ये देखो! युग बदल गया! कुम्हड़ा बाज़ार में नसीब वाला हो गया!"
कुछ नजरें हम तीनों से टकराती। दया भाव दिखाती, उनसे हम कुछ उम्मीद करते इससे पहले ही, कमबख्त पैर, उन्हें खींचकर दूर ले जाते। ऐसा ही सिलसिला घंटों चलता रहा। ग्राहक का नितांत अभाव। उम्मीद और आशा से पल-पल आवृत, हम दोनों भाई, कब तक दादी के पास चुप-चाप पड़े रहते? भूख तो लग ही गयी थी पर फिलहाल प्यास बुझाने के बहाने हम दोनों भाई वहाँ से खिसक लिए।

अगले ही पल, हम दोनों भाई जा पहुँचें खिलौनों की गली में जहां कई सारी दुकाने थी। एक से बढ़कर एक खिलौने। मन कौतूहल व हर्ष से भर गया। मिट्टी के खिलौने, प्लास्टिक के खिलौने, लकड़ी के खिलौने, कागज के खिलौने, ऊपर लटके खिलौने, नीचे बिखरे खिलौने। ताली बजाता बंदर, तेज़ दौड़ती कार, चुटपुटिया बंदूक, रंग-बिरंगी पुपुही, गोल-गोल गुब्बारें और खिट-पिट करती दाना-चुगती-मुर्गी। दाना-चुगती-मुर्गी हमेशा से ही दोनों भाइयों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा था। पिछली दिवाली से ही खरीद की योजना बनती पर हर बार असफल हो जाती। इस बार उम्मीद थी कि सफलता मिल जाएगी।

सिकुड़ी, मलिन व पुरातन परिधानों मे अलंकृत दोनों भाई, जिधर जाते, दुकानदार की शक्ल-सूरत हमें देखते ही गंभीर हो जाता। हमारे चेहरे की कान्ति देख, दुकानदार के चेहरे का आभामंडल मुरझाने लगता। घ्राणशक्ति बेजोड़, दुकानदार दूर से ही सूंघ लेते कि हम लोग ठन-ठन गोपाल है। बेकार के झमेले मे क्यूँ पड़ना! हमें देखते ही, भगादिबोधक शब्दों से प्रहार करते। "चल भाग! खिलौना नहीं है! पर हमारी जिद और बेशर्मी की ढाल उनके प्रहार को बेअसर कर देती। अगर जिद्दी बन रुक भी गए, तो बेचारे की शक्की दृष्टि हमें अनवरत घूरते रहता।

सुंदर खिलौना देखते ही, पहली उत्सुकता होती थी कीमत जानने की। इसके लिए भाई साहब तन कर धनाधिपतिक अंदाज मे दाम पूछते— "ई वाला ! केतना का है?" पर अगले ही पल, महंगा दाम सुनते ही मन उदास हो जाता। भाई साहब भी काफी तेज-तर्रार। दुकानदार को अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों में ऐसा उलझाते कि बेचारा कनफ्यूज हो जाता। देखने के बहाने खिलौना हाथ में लेते, दाम पूछते, फिर घूमा-फिरा कर लगते आनंद लूटने। सच में, बारी-बारी से कई खिलौने की खिलौनियत से मन गदगद हो जाता। परंतु कोमल खिलौने की कठोर भौतिक जांच से दुकानदार की घबराहट बढ़ जाती। बगैर पॉकेट घुटने तक धारीवाली पैंट, साथ ही पेबन्द वाली कमीज। कमीज की पॉकेट भी आधी फट कर एक तरफ झूलती हुई । पैसा रखने की कोई सार्थक जगह दुकानदार को नजर नहीं आती! गुस्सा से दुकानदार फटकारता – "चल रख! खिलौना खरीदना तेरे बस की बात नहीं!"

जिद भी तो कोई चीज होती है। दुत्कार से डरने लगे तो जीना हराम हो जाएगा। पर इससे पहले की दुकानदार की विचित्र शक्ल, विकृत शक्ल में परिवर्तित होती, हमलोग वहाँ से खिसक दूसरी दुकान के सामने खड़े हो जाते। ऐसे में अगर नया दुकानदार 'ग्राहक देवता है' के सिद्धांतों का पालन कर, दो टूक मीठी बात बोल देता—"क्या चाहिए बच्चा लोग!"-- तो ये हमारे लिए दुत्कार के बजाय चमत्कार होती।

खिलौना पसंद करने के बाद, पास में ही गरम गरम जलेबी बनते देख मुंह में पानी आ जाना स्वभाविक था। पर उस समय, हमलोगों के लिए, जिह्वासुख से ज्यादा सुखद दृष्टिसुख थी।

पुनः दोनों भाई लौट कर दादी के पास आ बैठे। समय के साथ-साथ मेला का सारा मज़ा निकला जा रहा था। हम दोनों भाई चुपचाप बैठे, उदास भाव से खिलौने की दुनिया में मन ही मन भ्रमण करने लगें। कभी चुटपुटिया बंदूक से खेलते तो कभी दाना–चुगती-मुर्गी से। कभी जलेबी खाते तो कभी झाल मुड़ी।

सामने से जाते हुए बहुतेरे लोग और उनके साथ खुशी से झूमते, हाथ में खिलौना व रंगीन गुब्बारा धरे बच्चों को देख, हमारी उत्सुकता बढ़ जाती। कुछ लाल-लाल जलेबी खाते, कपड़ो पर रस चुआते सामने से गुजर जाते और हम चुपचाप देखते ही रह जाते। कुछ रंग-बिरंगे पुपुही बजाते, शांत मन को व्यग्र कर जाते।

देखते ही देखते मेला अब खत्म होने को आया। पर जब तक सौदा बिके नहीं तब तक खिलौना, मिठाई और झाल मुड़ी नसीब में कैसे! हमारी इच्छाएँ सूर्य ढलने के साथ-साथ, शनैः शनैः मलिन होती गयी। अब लगने लगा था कि दादी की चवन्नी का बलिदान व्यर्थ हो जाएगा। तब चवन्नी से चार जलेबी आते थे।

तभी लगा कि कोई महाशय सामने खड़े थे और हमारे कुम्हड़ों को खरीद, ढेर सारा पैसा दादी के हाथों में रख गए। मानो कह रहे हो-- "राम राज्य में कोई उदास कैसे रह सकता है। मेला पर सबका हक है। जाओ! मेला का खूब आनंद लो। गरम गरम जलेबी खाओ। पसंद का खिलौना भी ले लो.... अगले दशहरे के मेला का इंतज़ार क्यूँ? खिलौना खरीदने का सपना पूरा कर लो.....। पर कुम्हड़े की किस्मत बदलना हमारे वश में न था। सामने न कोई महाशय थे और न ही कोई खरीदार। ये तो जीती-जागती आंखों का सपना था।
हम तीनों एक दूसरे की उदासी और भावनाओं को बखूबी समझ रहे थे। दुबारा पानी पीकर घर लौट चलने का हमारा अंदाज भी अनोखा था। यह सही था कि लौटती कदमों का उत्साह मेला जाती कदमों से कम था।

****

(6) "बड़ी कीमत"

"जिंदाबाद ! मुर्दाबाद !! चलबे ! चलबे ना!!" की गूंज में कृषि विभाग का सारा सेक्शन खो गया। कंधे पर असोशिएशन का झण्डा लिए निर्मल कुमार बस चिल्लाये जा रहे थे। दर्जनों की झुंड पीछे-पीछे सुर में सुर मिलाये जा रही थी। फिर झुंड, सभा मे तब्दील होकर, सरकार के खिलाफ जहर उगलने लगी। बीच-बीच में जिंदाबाद ! मुर्दाबाद !! चलबे ! चलबे ना !! की आवाज, आंदोलन को ऊष्मा प्रदान कर रही थी। निर्मल कुमार को देख मैं अवाक रह गया। वर्षों पुरानी संस्मरण आँखों के सामने घिरनी की तरह नाचने लगी.....

जेठ की दुपहरी। खेतों मे काम करते दयाल बाबू भूख-प्यास से व्याकुल हो चुके थे। बार-बार परबतिया की राह देख, आँखें थकने लगी थी। निर्मल का भी कहीं अता-पता नहीं था। गुस्से से मन, लाल हुआ जा रहा था। तभी निर्मल एक हाथ में गुरदेल और दूसरी हाथ में पनपियाई धरे, मदमस्त हाथी की तरह, आता हुआ दिखाई पड़ा। पास आते ही, गठरी, पेड़ की झुरमुट पर रख, पिता पर झुँझला उठा "मुझसे चना चबेना ढोने का काम न होगा!" उल्टे पाँव जाने को तैयार। बेटे का तमतमाया चेहरा देख, दयाल बाबू खुद पर काबू रखते हुए नसीहत दिये "लेट-लतीफी से काम न चलतै, निरमल ! जीवन में एगो काम त समय पर करल कर! ना त ये खातिर, बड़का कीमत चुकावे पड़ी! सरकारी नौकर न रहल की जब मन करे, आविएछे जावेएछे। पर निर्मल का मन पिता की बातों से दूर, कुहकती कोयल की कुक पर था। बस टुकुर-टुकुर पिता के झुरीदार चेहरे और सिकन पड़ी कपार को निहार रहा था।

बेगैर पठन-पाठन, अलबत्ता शानदार जीवन बीत रहा था। दिन भर घुमाई-फिराई-सुतायी के अलावा और कोई काज नहीं। गुरदेल से चिड़ियों का शिकार करना अब एक नया काम था। धूल जमी पुस्तक भी इंतज़ार में रहते कि कभी निर्मल उनका पन्ना पलट दे! "बहेड़ापनी से फुर्सत मिल जाय त तनिक पढ़-लिख कर भी लेहल कर! सरमा जी का पूत मोहना, लखपतिया टीसन का बड़ा बाबू बन मजा करतै! नौकरी में ढुकटै संग जीवन लीला चमक उठलय!"—बड़ा सा ढेला तोड़ते पिता की सीख पूर्ण बातें। निर्मल कोयल की आवाज़ सुन गुरदेल से निशाना साधा—" सरा.....क! धत तेरी! ससुरी फुर्र से उड़ गयी!"

दयाल बाबू धान की बुवाई के लिए खेत की मिट्टी नरम कर रहे थे। जागीरदारी तो नहीं, बस दस- बारह कट्ठा जमीन के मालिक थे। हरेक साल मेहनत मज़दूरी कर कुछ अनाज उगाते, तो घर का खर्चा-पानी चलता था। तीन-चार कट्ठा में तो बाग बगीचा ही था। सगरो मोटा–मोटा गाछ-बिरीछ। मालदा आम के सात विशाल पेड़ थे। वाह! आम के मौसम का भी क्या कहना! हर समय लफेड़ों की जमघट लगी रहती। निर्मल भी दिन भर, पेड़ की डाली पर कूद-फांद करता, कच्चा-पक्का आम खा-खा कर अघाया रहता।

देह से निकला पसीना सूखकर सफ़ेद नमक बन गयी थी। सूरज की जलती लौ की तरफ दयाल बाबू एक नजर घुमा कर देखें। पुनःगमछा से पसीना पोछते हुए, बेटे की तरफ मुखातिब हुए "घाम में देह जरावे के जरूरत न पड़तै! एक बार सरकारी नौकरी भेल की रोपया-पैसा का कावनों दिक्कत न रहल थी! सगरों गांवों से अगुआ सुंदर छोरी के फोटो हाथ मे धरे आगे-पीछे घुमतो!" सुंदर छोरी का नाम सुनते ही निर्मल लज्जा गया। उसके चेहरे की लालिमा निखर आई। पिता की बातें निर्मल के गले उतरते देर न लगी। सरकारी नौकरी का बीजारोपण मन में हो गया। माध्यमिक पूरा करते ही, सरकारी बाबू बनने की लालसा, अंकुरित होकर, सुंदर दुल्हन की तरह मन में सज गयी।

दहकती धूप थी, बुआई का काम चल रहा था, निर्मल को एक दिन खेत मे काम करना पड़ गया। बेचारे की पीठ जलकर बैगन-सी काली हो गयी। बस क्या था, पिता की कठोर बातें अब और सहज लगने लगी। जैसे ही कॉलेज खत्म किया सरकारी नौकरी की चाहत, पौधा से पेड़ बन, कुलबुलाने लगा।

सरकारी नौकरी मिल जाय, तो बात ही क्या? इसके लिए प्रयास व परिश्रम घर-परिवार से ही शुरू। पर क्या अकेला चना कभी भाड़ फोड़ता है भला? एकाध फॉर्म भर, आस-पास के जिला मुख्यालयों में चपरासी-किरानी की परीक्षा भी दे आए। रिजल्ट की राह देखते-देखते कई माह गुजर गए। इसी बीच, मोहन का छोटा भाई राजेश का भी बीडीओ ऑफिस में, क्लर्क की नौकरी लग गयी। "खाली सुतले रहब! सुरूज़ माथा पर चढ़ आइल। संगही के राजेशवा कीलेर्क बन गेल! ये जनम मे तोहर रिजल्टवा आई की ना?" दयाल बाबू भोरे-भोरे बेटे पर प्रश्न दागे। उनके स्वर मे गुस्सा से ज्यादा उदासी का भाव था । निर्मल अभी सोया ही था, हड़बड़ा कर उठ बैठा। पिता की बातें सुन एकदम भकुआ गया। उनके पास कोई जवाब न था।

राजेश और निर्मल बचपन में एक ही कक्षा में थे परंतु राजेश था तेज, बुद्धि थी तीक्ष्ण। किसी काम को करने में आकाश पाताल एक कर देता, सो आगे बढ़ निकला। निर्मल था भकू और बौड़म! अभियापन व लेट-लतीफी, चुंबक जैसे, उसे एक ही क्लास में, कई साल तक चिपकाए रखे।

राजेश की सफलता की खबर मन को झकझोर दी। अब और देर करने का कोई कारण न था। कुछ कर दिखाने का हौंसला बुलंद कर, अगले दिन माता-पिता से आशीर्वाद लिए और चल दिये वैरागी बनने। पहुँच गए नजदीकी शहर में।जीवन का तेइसवाँ साल प्राकृतिक सुंदरता से सरोबार सिल्क सिटी भागलपुर और इसमें अवस्थित छोटी खंजरपुर। खंजरपुर चौक से महज चार गली दूर पर बसा आदमपुर। आदमपुर का चांदमारी मोहल्ला और इस मोहल्ले के बीचो-बीच विराजमान तिलकमांझी लॉज। लॉज के सुदूर बाए कोने में विद्यमान एक छोटा-सा कुटीर। कुटीर की शान बढ़ाती एक सकरी बेड और तीन-तीन ईटों पर जड़ित एक छोटी-सी स्टडी टेबल। टेबल का दाहिना हिस्सा प्रतियोगी पुस्तकें व दिग्दर्शन से दबी हुई। जबकि बाया हिस्सा समसामयिकी से सुसज्जित। "दर्पण-किरण" के लिए अलग-अलग पंक्ति। कमरे के एक कोने में पड़ी, छोटी-सी गैस स्टोव, कुकर और दो-चार थाली-बर्तन। बेड के नीचे रखी चावल, दाल, नून-हल्दी के दो-चार डिब्बे। तेल की शीशी और घी की छोटी डिबिया से अलंकृत दायी दीवाल का तख़्ता। बायी दीवार की खूंटी से लटकती निकर, दो-तीन कमीज व पैंट। दूसरे कोने में पड़ी टूटी स्टूल पर खिटिर-पिटिर करती एक छोटी-सी फ़ैन। ले-देकर छोटा-सा तपोवन जिसके योगी थे निर्मल कुमार।

जीवन का चौबीसवाँ साल

कमरतोड़ तपस्या इनकी दिनचर्या। सुबह नित्य-क्रिया से निवृत हुए और शुरू कर दिये योग-साधना-- "सेट-प्रैक्टिस"। क्या मजाल की कोई इनकी योगमुद्रा बीच मे भंग करें। तत्पश्चात, चावल-चोखा के भरोसे और पहुँच गए गुरु जी द्वारे ("करियर-लौंचर")। पुनः दिन भर समाधि में लीन रहते। जैसे ही शाम हुई दोस्तों संग ग्रुप-चर्चा ठन जाती। विघ्न प्रश्नों की बाण को अपने उत्तर की ढाल से नेस्तनाबूद करते। जीवन सीमित, संयमित, सकरी और सिकुड़ी हुई पगडंडियों पर साँय-साँय सरकता हुआ।

अभेद प्रतियोगी-परीक्षाओं की श्रृंखला-व्यूह भेदने की निर्मलजी की तैयारी देखते ही बनती। । निर्मल कुमार का जीवन-यापन व दिनचर्या देख आँखों पर विश्वास करना मुश्किल हो रहा था। भक्कुपन, अभियापन और बौखी जैसी गुणों से मुक्ति मिल चुकी थी। साहब अब एक मेहनती नवयुवक थे।

जीवन का पच्चीसवाँ साल

रेल परिक्रमा और भारत भ्रमण के बगैर सफलता की सोच बेमानी थी। पहली चढ़ाई दिल्ली पर होनी थी। जान-पहचान के आठ मित्रों की सेना तैयार। सारे दोस्त सैनिक, स्टेशन पर निर्मल बाबू का बेसब्री से बाट जोह रहे थे। रेलवे स्टेशन भी

बेरोजगार सेनाओं से पूरी तरह खचाखच थी। पर निर्मल बाबू का कहीं अता-पता नहीं। "निरमालवा भी खूब भातखाऊ है! गाड़ी का बखत हो गया, कही दिख नहीं रहा! लगता है, जरूर गाड़ी छोड़वायेगा!" एक सैनिक मित्र का गुस्सा फूट पड़ा। "रसाला का सिंगार-पटार खत्म होगा तब न घर-दुवार छोड़ेगा! मेहरारू जइसन त येसनों पावडर, होठ लाली लगा रहा होगा !"

दूर का सफर, सुबह से ही निर्मल कुमार की तैयारी चल रही थी। श्रृंगार-पटार के बाद, आठ दस रोटी अखबार मे लपेट, नमक,प्याज,मिर्ची व आलू की भुजिया संग पोलीथीन में कोच कर, बैग के साइड पॉकेट मे ठूस दिए। पीठ पर बैग लादे और चल दिये रेलवे स्टेशन की तरफ। स्टेशन पहुंचे ही थे कि ट्रेन छूक-छूक करती प्लेटफार्म पर आ धमकी। दोस्तगण, स्टेशन के बाहर आंखे फाड़ इनको खोज रहे थे। शुक्र था! दोस्तों से शीघ्र मुलाक़ात हो गयी। झट दोस्तों संग हो लिए और चल पड़े जीवन का जंग जीतने।
एक घंटा सफर के बाद, पास मे बैठा एक सैनिक अपनी बैग से एड्मिट बाहर निकाला। निर्मल बाबू अवाक रह गए! सत्रह घइला पानी देह पर! झक मार हाथ सिर पर रख लिए। "धत ससुरी! एड्मिट कार्ड तो टेबुलवे पर छुट गेल! अब एग्जाम कैसे देंगे!" जमालपुर में ट्रेन रुकी, दोस्तों को अलबिदा किए और बैरन लौट आए।

करियर की पहली चढ़ाई, पर असफल प्रयास। इसके बाद भी कभी ट्रेन छुट गयी तो कभी सेंटर पर देर से पहुंचे। कभी रोल् नंबर गलत भर दिये तो कभी ओएमआर का गोला रंगीन ही नहीं कर पाये। दर्जनों एग्ज़ाम यू ही चले गए !" तब जाकर एक अनुभवी खिलाड़ी बन पाये थे। सीनियर सैनिक बनने का संघर्ष भी अविस्मरणीय होता है।

जीवन का छब्बीसवाँ साल

सन 2003 का पावन वर्ष क्रांतिकारी साबित हुआ। माँ वागीश्वरी की असीम कृपा छायी रही और इनकी कर्मठता कोरे करियर मे रंग भरती गयी। एक सफलता की चाह थी, पर तीन-तीन सफलताओं से इनकी प्रसिद्धि, पूरे आदमपुर में धमाचौकड़ी मचा दी। त्याग दिये कुटीर, छोड़ चले तपोवन, बनने चले सरकारी बाबू, सुदूर मेट्रो सिटि में। जिंदगी अब नए पथ पर।

तैयारी करते समय मेहनती तो बन गए थे पर स्वभाव से लेट-लतीफी अभी तक गयी नहीं थी। करेक्टर और मेडिकल सेर्टिफिकेट बनवाते, लाते तीन दिन की देरी कर दी। बेचारे कृषि दफ्तर में ज्वॉइन करने वाले, अपने बैच के अंतिमवाँ कंडीडेट थे। तीन जनवरी 2004 को नॉकरी तो जॉइन किये पर साहब को ओल्ड पेन्शन (OPS) से बाहर कर न्यू पेन्शन (NPS) मे डाल दिया गया। तब निर्मल कुमार की OPS (ओल्ड पेंशन स्कीम) या NPS (न्यू पेंशन स्कीम) की समझ थी ही कितनी?

निर्मल कुमार सौतेला व्यवहार व अंधकारमय भविष्य से खिन्न थे! न जीपीएफ (GPF) से कोई लोन, न कोई अग्रिम (एडवांस) । न रिटायरमेंट के बाद आधा पेंशन न उसके ऊपर महंगाई भत्ता। न पेंशन कम्यूटेशन न पुख्ता फैमिली पेंशन। बस वेतन का दस प्रतिशत देते जाओ, मौके के समय दोस्तों के सामने हाथ फैलाओं।

अपनी लेटलतीफी पर पिता की नसीहत रह रह कर याद आती—"जीवन मे एगो काम त समय पर करल कर! ना त ये खातिर, बड़का कीमत चुकावे पड़ी!" अब पश्चताए होत क्या, जब चिरई चुग गईल खेत!"

आज निर्मल कुमार आंदोलन की आग में स्वयं को झोक, कंधे पर झण्डा लटकाये, ऑफिस-ऑफिस घूम-घूम कर, सरकार से पुरानी पेंशन बहाली की मांग कर रहे हैं। " बहाल करो ! पुरानी पेंशन बहाल करो! मुर्दाबाद! जिंदाबाद! की नारा से सारा सेक्शन गूंज रहा है।"

पुरानी पेंशन मिलनी चाहिए कि नहीं निश्चय ही एक आंदोलित विषय है। आन्दोलन और फिर कोर्ट की फटकार किस हद तक NPS को मजबूत बना सकती है ये तो पता नही! परंतु कई वर्षों की सेवा पश्चात एक कर्मी को न्यूनतम पेंशन तो मिलनी ही चाहिये। स्वजन का दरवाजा सदैव खुला रखने वाली एक सुनहरी चाबी है पुरानी पेंशन।

****

(7)

नब्बे का दशक। बिहार यूपी का राजनीतिक व सामाजिक परिदृश्य। राजनीति में जातीय आधार पर वोटिंग का बीजारोंपन ताकि वर्षों से उपेक्षित लोग विशेषकर पिछड़ा व दलित जातियाँ अपना हित साध सके। संगठन मजबूत हो इसके लिए लगभग हर बिरादरी के लोगों में एकता प्रदर्शित करने का सिलसिला शुरू हुआ। आए दिन किसी न किसी विरादरी की सभा आयोजित होती। इन सभाओं का मुख्य अजेंडा हालांकि राजनीतिक था परंतु बहस आम तौर पर सामाजिक सुधार के लिए होते जैसे- दहेज-प्रथा पर प्रतिबंध लगाना, जरूरतमंद लोगों की सहायता करना, अशिक्षा, उल्टी-सीधी कुरीतियों से समाज को विमुक्त करना, सामाजिक चेतना जागृत करना इत्यादि।

ऐसी सभाओं मे दहेज प्रथा को खत्म करने की कवायद तो शुरू हुई पर व्यक्तिगत हित, कुटिलता व चालबाजी के कारण, इसे ज्यादा सफलता नहीं मिल सकी। लोभ, लालच, झूठी शान, मिथ्या-प्रदर्शन इत्यादि पर आधारित यह प्रथा आज भी समाज में बखूबी प्रचलित है। यह सही है कि इसकी जड़े काफी गहरी जमी हुई हैं जिसके समूल नाश के लिए कठोर कानून की जरूरत है। सरकार ने कानून भी बनाई पर कागजों पर इसका प्रभाव ज्यादा दिखता है। मजबूत इरादा और इच्छा शक्ति के बगैर, इस कुप्रथा से पार पाना एक कठिन चुनौती है। एक प्रतिबिम्ब मेरे शब्दों में ...सुनैना।"हाँ! हाँ!! कलंक है! कलंक है!! इसे मिटाना ही होगा!"—सम्मेलन में उपस्थित सैकड़ों बंधुओं ने अध्यक्ष चंद्रभान बाबू के सुर में सुर मिलाये। अध्यक्ष महोदय का उत्साह बहुगुणित हो गया।

"आखिर हमारा समाज, कितनी कन्याओं की बलि लेगा? बहू-बेटियां कब तक प्रताड़ित होगी? लोभ और लालच कब खत्म होंगे?" अध्यक्ष महोदय का रंग मंच से पुनः हुंकार। "बेटियों पर इतना जुल्म क्यों? आज हम प्रण करते हैं कि न दहेज लेंगे न देंगे!"

सभा में मौजूद बिरादरी के लोगों ने अध्यक्ष महोदय का जोरदार समर्थन किया--"हम प्रण करते है न दहेज लेंगे न देंगे!" अध्यक्ष महोदय के चेहरे से तनाव गायब थी। गहरी सांस भरते हुए बोले--"वाह! अब बेटी की शादी बिन दहेज! लोगों की काली जुबान बंद!" लगा पल भर में सिर का भार शेष। सुखद अनुभूति अकल्पनीय थी।

बंधुओं के सहर्ष स्वीकृति के बाद बिरादरी में दहेज विरोधी मसौदा लागू हो गया। साथ ही दहेज लोभियों को अब बिरादरी से बहिष्कृत करने का दंडात्मक प्रावधान भी शुरू। क्या मजाल की अब कोई दहेज की मांग करे! हालांकि मसौदा लागू होते ही लोगों के चेहरे पर मिली-जुली प्रतिक्रिया दिखाई दी। लड़के वालों के चेहरे पर हर्ष की कृत्रिम भावाकृति साफ दिख रही थी। वही लड़की वालों के चेहरे पर उल्लास की लहर उमड़ पड़ी।

चंद्रभान बाबू सामाजिक कुरीतियों से हमेशा क्षुब्ध रहते। जात-बिरादरी में बढ़ती दहेज प्रथा व बेटा-बेटी के पालन-पोषण में विभेद से सदैव कुपित। दम तोड़ती सामाजिक संवेदना व भ्रूण हत्या जैसे संगीन अपराध से भानु बाबू अंदर ही अंदर संत्रस्त होकर रह गए थे। लोगों की कलुषित विचारधारा --"मनपसंद लड़का चाहिए, तो दहेज देना ही होगा, इसमें कानून क्या कर सकता!" से उनकी चित्त की बेचैनी बढ़ जाती।

बेलाही गाँव के प्रसिद्ध जागीरदार थे चंद्रभान बाबू। कई एकड़ खेत व बाग-बगीचे के मालिक। धन-दौलत का किंचित घमंड नहीं। स्वर्गीय पिता के बनाए उसूलों पर बखूबी चलते। साथ ही जरूरतमन्द लोगों की जी भर मदद करना इनके आदतों मे सुमार था।

भानुबाबू की बढ़ती लोकप्रियता और विचारों से आसपास के जागीरदार ईर्ष्या से जलने-भुनने लगे थे। भानु बाबू का खिल्ली उड़ाते, ताना मारते। दहेज बंदी वाली विचारों पर तो खुला तंज़ कसते--"राम राज्य आएगा! दहेज मिट जाएगा! घोड़ा पर चढ़ सपनों का राजकुमार बेटी को ले जाएगा!"

ऐसे में, भानु बाबू धैर्य धारण कर, उचित समय की प्रतीक्षा करते। "दहेज प्रथा को समाज से मिटा कर रहेंगे! चाहे कुछ भी हो जाय, दहेज के नाम पर एक ढेला नहीं देंगे!"--बेटी की शादी बिन दहेज कर उन टुच्चों के मुंह पर सशक्त तमाचा जड़ना भानु बाबू का प्रण था। पर बगैर सामाजिक चेतना जागृत किए यह एक दुष्कर कार्य था।

वर्षों पहले, ऑपरेशन थिएटर के गेट पर चहलकदमी करते भानु बाबू की हृदय की धड़कन तेज़ हो गयी थी। तभी नर्स दरवाजा खोल बधाई देने लगी "मुबारक हो! लक्ष्मी आई है! भानु बाबू की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। पुत्री की आँखों की भौगोलिक संरचना, प्राकृतिक चमक व सुंदरता देख मन खिल उठा। सहसा मुंह से निकल पड़ा "सुनैना"!

सर्वत्र खुशहाली थी, पर एक कोने में खाट पर पड़ी बड़ी मालकिन के चेहरे का रंग-बेरंग था। खाँसते हुए बोली " चंदरू! ढोल पीटने से बेटी भला बेटा न हो जाएगी! बेटी तो पराया धन है! पोते का मुंह देख लेती तो आराम से प्राण-पखेरू निकल पाते"।

भानु बाबू झुँझलाते हुए प्रतिकार किए—"अब युग बदल गया है, माँ! बेटा-बेटी एक समान!" बेटे की बात सुन माँ भी भभक उठी-- "हम कौन होते हैं सामाजिक रीति को बदलने वाले?" वृद्ध माँ की जली-कटी बातों से भानु बाबू तिलमिला गए। झट कमरे से बाहर निकल, बेटी सुनैना के पास जा पहुँचे। सारा गुस्सा बर्फ की तरह पिघल गया।

समय के साथ-साथ चंद्रभान बाबू का प्यार लाडली के लिए बढ़ता गया। पल-भर के लिए भी बेटी से दूर रह पाना मुश्किल था। भानु बाबू के दिल में सुनैना के लिए तनिक भी विभेद न था। जब तक भानु बाबू बिटिया को गोद में न उठाते, कंधों पर न चढ़ाते तब तक सकुन न मिलता। सच में, इस प्यार की अनुभूति भी स्वर्गिक थी। अगली संतान की इच्छा किसे? बेटी के प्यार को बांटना अब मुश्किल था।

बड़ी मालकिन सदैव चिंतित रहती थी कि चंदरू के बाद खानदान को आगे कौन ले जाएगा।"चिराग कब आयेगा ? ऐसी कोंख का क्या फायदा जिसमे केवल पराया धन ही गढ़ा हो ?" बड़ी मालकिन की तानें सुन, भानु बाबू की पत्नी 'माया' भी तंग होने लगी।

तानों और उलाहनों के बीच बेगम साहिबा के सुखद पल नीरस पल मे बदलने लगे। आखिर कब तक, सांसू माँ के प्रहार को झेलती! अगली संतान के लिए अपनी सहमति जाहिर कर दी। भानु बाबू पत्नी की बातें सुन दंग रह गए। दो टुक जवाब दिए-- "कैसी मां हो, बेटी का प्यार बांटना चाहती हो ?"
माँ व पत्नी के विचारों से, नाखुश भानु बाबू चिंतामग्न रहते। "मालिक! बड़ी मालकिन की बातों में छुपी सच्चाई को कैसे दबाया जा सकता है?"--भानु बाबू के पैर दबाते, बड़ा नौकर रामस्वरुप ने सुझाव दिया। "बिटिया तो ब्याह के बाद ससुराल चली जाएगी तब बगैर वारिस इन सारे जायदाद का क्या होगा? भानु बाबू नौकर को डांटते हुए बोले—"चल पैर दबा! बेटा-बेटी की समझ है मुझमें"।

सुनैना अब दो साल की हो चुकी थी। बड़ी मालकिन की तबीयत भी खराब रहने लगी। एक दिन सूर्योदय से पहले ही, स्थिति बिगड़ गयी । बड़ी मालकिन इस दुनियाँ को छोड़ बैकुंठधाम जा चुकी थी। पर जाते-जाते अपनी इच्छाओं की गठरी भानु बाबू के सर पर पटक दी थी।

बड़ी मालकिन के जाने से भानु बाबू उदास और खिन्न रहने लगे। दिल के किसी कोने में सुषुप्त पड़ा अनुत्तरित प्रश्न, मन को कचोटने लगा। समय बीतने के साथ-साथ, बेटियों के प्यार में कुछ कमी तो नहीं थी। पर धीरे-धीरे चन्द्रभान बाबू में कुलदीपक का मोह खुल कर दिखने लगा।

अगले साल, सावन का महिना। चंद्रभान बाबू ऑपरेशन थिएटर के सामने। चित्त की चंचलता बढ़ गयी थी। तभी नर्स चीख पड़ी "बधाई हो ! बेटा हुआ है!" राहत की सांस लेते हुए भानु बाबू, नर्स व आया पर रुपयों की बरसात कर दिये।

श्रवण बेटा 'बीरन' का आगमन का क्या हुआ, भानु बाबू अपनी प्यार की गगरी बेटे पर उड़ेल दिये। घर खिलौनों से भर गया। माँ के साथ-साथ सुनैना भी, जी जान से, छोटे भाई का सेवा-सत्कार करती।

बीरन के आने के बाद भानु बाबू का प्यार सुनैना के लिए कम न हुआ। समय के साथ साथ सुनैना की शिक्षा-दीक्षा शुरू हो गयी। गाँव के स्कूल में दाखिला मिल गया। पढ़ाई-लिखाई में अव्वल आती। तीव्र व तीक्ष्ण बुद्धि की स्वामिनी। शिक्षक उसकी बुद्धिमत्ता का वर्णन करते, थकते नहीं। पढ़-लिख सुनैना भी, बेटों के जैसे अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती थी।

बीरन छुटपन से ही दुर्बल व कमजोर था। डॉक्टर की हिदायत पर नियमित दूध, मक्खन, मेवा-मलाई का सेवन शुरू करना पड़ा। स्वास्थ्य पर नजर न लगे, इसके लिए सुनैना दूर से ही भाई को मेवा-मलाई खाते देखती। भाई जब कभी मेवा-मलाई नहीं खा पाता, तो बचा मेवा मलाई चख लेती। मेवा मलाई से बेटियाँ अक्सर दूर ही रहती। उनको हजम नहीं होता! भाई के स्वास्थ्य की मंगल कामना के लिए, सुनैना उपवास रखती, मंदिर भी जाती।

बीरन अब सात साल का हृष्ट-पुष्ट बालक था पर अत्यधिक प्यार दुलार से बहेड़ापन का शिकार होने लगा। पिताजी गुस्से से लाल बीरन पर बिलबिला उठे। सजा के तौर पर पठन-पाठन के लिए सुबह शाम दो अलग-अलग गुरुजी घर पर आने लगे। बेचारे का रो-रो कर बुरा हाल था। सुनैना भी भाई की मदद करती। देखते ही देखते, बीरन का गाँव से दूर, शहर के सख़्त निजी स्कूल में दाखिला हो गया। माध्यमिक तक उसने शहर में ही पढ़ाई की।
इधर सुनैना का प्रत्युत्पन्नमतित्व (presence of mind) देख शिक्षकों ने भानु बाबू को सुझाव दिया"बिटिया होनहार है! पढ़े तो कुछ कर दिखाएगी"। इसके बाद भानु बाबू, सुनैना का नामांकन पास के कॉलेज में करा दिया। वैसे सुनैना डॉक्टरी

की पढ़ाई करना चाहती। पर इसकी तैयारी के लिए तो गाँव से दूर शहर में जाना होता। "लड़की जात अकेले बाहर कैसे रह पाएगी!" भानु बाबू बेटी के लिए सदैव चिंतित रहते। "कुछ ऊँच- नीच हो गया तो मेरा प्राण ही निकाल जाएगा।" पिता की बातें सुन, बेटी भाव-विह्वल हो गयी। उसके नैनों में बादल उमड़ पड़े।

पिता के उसूलों को एक बेटी कैसे तोड़ सकती थी? झट अपने सपनों को भुलाकर, गृह कार्यों में दक्ष होने के लिए माँ से प्रशिक्षण लेने लगी। बचे समय में, घर से ही कॉलेज की पढ़ाई करती। प्रतिभावान तो थी ही, होम साइंस से स्नातक कर, कटाई-बुनाई-सिलाई का काम सीखने लगी। नृत्य कला में भी पारंगत हो चुकी थी। पाक कला (कुकिंग) की दीक्षा भी हासिल कर, मीठी-नमकीन पकवान बनाकर भाई को खिलाने का सपना देखती। दूसरे जागीरदार सुनैना के उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा-दीक्षा से हैरान, जल-भून रहे थे। भानु बाबू गर्व से फुले न समाते--"बेटा बेटी मे विभेद कैसा!"

माध्यमिक के बाद, बीरन बिगड़ैल प्रवृति का हो चला। धनाढ्य दोस्तों संग अवारागर्दी आम बात थी। नशे की लत की वजह से एक दो बार हवालात भी जा पहुंचा था। बेटे की पढ़न-पाठन में बढ़ती अक्रियाशीलता व अरुचि से भानु बाबू व्याकुल हो उठे। आवारा दोस्तों की कुसंगति तोड़ने के लिए शीघ्र ही बीरन को बड़े शहर में स्थापित करने का फैसला गैरवाजिब न था। बीरन का मिजाज और गुस्सा देखने लायक था--"मुझे नहीं पढ़ना! मैं अपने दोस्तों से दूर नहीं जाऊंगा!" पर भानु बाबू भी थे उसूल के पक्के। बेटे को सबक सीखाकर दम लेना चाहते थे। सख्त व अनुशासित मेडिकल कोचिंग में एडमिशन दिला दी।

जेल जैसे जीवन से बेचारे की स्वतन्त्रता बाधित हो गयी। तीन साल मुश्किल से गुजरा, शिक्षकों ने पुस्तक की एक-एक पृष्ठ रटा डाली। ईश्वर की माया व बहन के प्यार से उसे चौथे साल में सफलता मिल ही गयी। 'क्या हुआ मैं डॉक्टर नहीं बन पायी! भाई तो डॉक्टर बन जाएगा" की खुशी से सुनैना आह्लादित हो उठी। बेटी की खुशी से पिता भी झंकृत हो जाते।

सुंदर, सुशील, संस्कारी व गृह कार्य में अब पारंगत सुनैना शादी के लिए परिपक्व हो चुकी थी। सोलहवां बसंत तो छह साल पहले ही निकल चुका था। बेटी को भानु बाबू सभी कलाओं में दक्ष कर देना चाहते थे। शादी पूर्व सुनहरे समय को गुणकारी शिक्षा-दीक्षा मे परिवर्तित करने के लिए साहब सदैव प्रयासरत थे। "शादी-ब्याह के बाद बेटी पराई हो जाएगी" की सोच से ही भानु बाबू की घबराहट बढ़ जाती।

बेटी की प्यार से विमुख होना सचमुच कष्टकर था। कलेजे पर पत्थर रख, जागीरदारों के यहाँ लड़का देखने गए। सबको ढेर सारा दहेज व धन दौलत चाहिए था। पर किसी के मन में सुनैना के गुणों व स्नातकीय शिक्षा की कद्र नहीं थी। भानु बाबू गर्व से कह सुनाते—"बेटी को स्नातक तक पढ़ाया लिखाया, कई विशिष्ट गुणों में सम्पन्न बनाया। कभी बेटा-बेटी में विभेद न किया, ऐसी बेटी के लिए दहेज कैसा? दुल्हन ही तो दहेज है!" पर जागीरदार तो अपने–अपने बेटे को मानो बैल बाजार में सजा रखे थे। भानु बाबू की शिक्षाप्रद बातें उनकी समझ से बाहर थी।

जागीरदारों के मुंह से दहेज की मांग सुनकर भानु बाबू मन ही मन उन्हें लालची, बाजारू, बैल- बिक्रेता, निपढ़, लंपट और न जाने कितने गंदे भाववाचक संज्ञा से खरी-खोटी सुनाते। "आखिर दहेज कैसे देते? क्या अपने ही प्रण को तोड़ देते? क्या यह पिता के उसूलों और सिद्धांतों से समझौता न होता? फिर समाज से दहेज का दानव कैसे मरता?" गुस्से और अपमान का घूंट पी कर घर लौट आते। सुनैना का समर्थन पिता के उसूलों के लिए प्राण वायु था। त्याग की मूर्ति बन बैठी थी—"चाहे मुझे ताउम्र कुवारी क्यूँ न रहना पड़े, पर दहेज लोभियों के घर में शादी नहीं करूंगी! दहेज मांगने

वाले तुच्छ सोच के होते हैं"। अब तो दहेज के खिलाफ सामाजिक चेतना जगाने मे सुनैना भी खुल कर पिता का साथ देने लगी।

बेटी की मेहनत और त्याग का परिणाम आज निकल चुका था। बिरादरी ने दहेज को त्याग दिया। चंद्रभान बाबू का वर्षों का सपना सच हो गया। समाज दहेज मुक्त हो चला था। अगले कुछ ही दिनों में बिना एक ढेला दिये "दुल्हन ही दहेज है" के सिद्धांत पर,भानु बाबू अपनी लाडली की शादी एक प्रसिद्ध जागीरदार के घर कर दिये। जागीरदार बेचारा हाथ मलते रह गया। पिता के कृषि-कार्यों में हाथ बटाता,माध्यमिक तक पढ़ा लिखा दूल्हे की भी पाँव तले जमीन खिसक गयी। 'फोर्ड' का सपना टूट गया था।

बीरन पर भी दहेज-कानून के कारण शादी का दबाव होने लगा। ऐसे में भानु बाबू बड़ी ही सहजता से बीरन की शादी, अगले तीन सालों के लिए टाल दिये ताकि उसकी मेडिकल की पढ़ाई पूरी हो जाय। "रोका/ छेका" की बातें सुन भानु बाबू सुझाव देते—"बेटा-बेटी मे विभेद कैसा? मेडिकल की पढ़ाई के बाद हम बेटे की सीधे शादी करेंगे। रोका/ छेका हमारे लिए अशुभ है! कुलदेवता नाराज हो जाएंगे!"

अगले कुछ वर्षों में जब दहेज कानून सुस्त हो गया, तब भानु बाबू बीरन की शादी बड़े ही सरल ढंग से करने के लिए हामी भर दी। बिन मांगे एक फोर्ड, मेडिकल क्लीनिक खोलने के उपकरण, सोने की मोटी चेन, बड़ी अंगूठी, एक बड़ा सा चीनी मिल व महज कुछ लाख रुपए सौगात में एक जागीरदार उनके दरवाजे पर रख गया ताकि भानु बाबू का वसूल व प्रण विघ्न न हो। ईश्वर की सौगात समझ, भानु बाबू मना न कर सके।

इधर सास, ससुर, ननद यहाँ तक की कामवाली बाइयों के तानों और उलाहनों के बीच सुनैना का विवाहित जीवन नारकीय हाल में जा पहुंचा। घर का सारा काज करती, जो मिलता चुपचाप खाती,ताना सुनती, कभी पलट कर जबाब न देती। खुशहाली व सुखद जीवन की परिकल्पना बेमानी थी। पति बेचारा क्या बोलता? ऐसे में सुनैना का त्याग देखने लायक था— जुबान पर पिता के लिए कोई भी गिला-शिकवा न था। माता-पिता के एक-एक बूंद खून का कर्ज चुकाने के लिए उसका जीवन कम पड़ रहा था।

समाज अब दहेज मुक्त हो चला था। भानु बाबू "बेटा-बेटी में विभेद कैसा" की शिक्षा सर्वत्र देते थकते नहीं। मिथ्याभिमान मे इतना खो गए थे कि उन्हें कभी अपनी बेटी का दर्द दिखा ही नहीं। उसूल के पक्के जो थे। दहेज विरोधी कानून के बाद, नारी शिक्षा पर सामाजिक चेतना जागृत करने का दुष्कर कार्य अब भानु बाबू का अगला पड़ाव था।

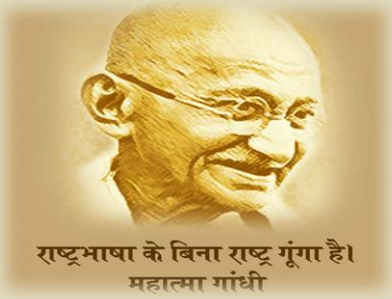

****

पूजा दास
वरिष्ठ लेखापरीक्षक

नीले- नीले आसमान में, पंख लगा मैं उड़े चली थी।
बादल, बिजली से बतियाते, जिस ओर चाहूँ मैं मुड़े चली थी।।

ये थी कोई नयी सी दुनिया, नज़ारें थे अद्भुत।
गति को अपने दे विराम, तनिक गयी मैं रुक।।

देखा अपने चारों ओर, सब कुछ था विपरीत।
पानी में पक्षी बसर थे करते, मत्स्य गाते थे गीत।।

पेड़ों पे रंग- बिरंगे पत्ते, नदियों में मोतियाँ बहती।
पर्वत थे सारे छोटे- छोटे, जिनमें थी परियां रहती।।

लोग भी कितने घुले- मिले थे, ना कोई शिकवे, कोई गिले थे।
जात- पात का ज्ञान नहीं था, लोगों में अभिमान नहीं था।।

सुख में मिलकर सब गीत थे गाते, दुःख में बढ़कर सब गले लगाते।
ना कोई अपना, कोई पराया, सबने सबको था अपनाया।।

मानवता का रूप ये सुंदर, मेरे मन को अति भाया।
सोच रही थी सच या सपना, पर मुझे समझ ना आया।।

तभी कानों में गूंजी आवाज़, उठ जा मेरी प्यारी।
आँख खुली तो एक ही पल में, ओझल वो दुनिया सारी।।

ना वो दुनिया अपनी थी, ना लोग ही थे वो अपने।
पल में जो सारे हो गए ओझल, वो थे बस मेरे सपने।।

ना थी अब वो प्यारी दुनिया, ना थे गज़ब नज़ारे ।
पर जो सपने देखे थे, पूरे करने थे सारे ।।

अब यही है मेरा नील गगन और यहीं पे मेरे सपने ।
होंगे पूरे अरमान वो सारे, जब साथ हैं मेरे अपने ।।

जब साथ हैं मेरे अपने और प्यारे- प्यारे सपने ।।

****

रमेश झा
हिंदी अधिकारी

भारत देश की इस पवित्र भूमि पर एक से एक ऐसे महान व्यक्तियों ने जन्म लिया, जिनकी उम्र और प्रतिभा दोनों में इतना अंतर हैं कि उनके द्वारा रचित कृतियों की अनगिनत संख्या को देखकर किसी भी व्यक्ति के लिए यह मानना असंभव होगा कि उनके द्वारा धरती पर बिताए गए अत्यल्प समय में उन्होंने इतने सारे महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न कर दिए। उनके द्वारा रचित रचनाओं पर विवाद होना स्वाभाविक है क्योंकि सामान्य मनुष्य का यह स्वाभाविक लक्षण होता है कि वह दूसरों की प्रतिभा पर अतिशीघ्र विश्वास नहीं करता बल्कि उसका सदैव अपने विवेक से आकलन करता रहता है। अपनी विचारों को स्पष्ट करने हेतु रचनाकारों को सदैव तर्क देने के लिए तत्पर रहना पड़ता है। यदि वह अपने तर्क से आम जनता को संतुष्ट कर पाता है तभी उसे विद्वान माना जाता है या यों कहे कि उसे विद्वान बनने में काफी संघर्ष और समय लगता है। परंतु बड़े आश्चर्य की बात है कि इस महान भूमि में एक ऐसे बालक ने जन्म लिया जिसने अपनी जन्मजात प्रतिभा का लोहा अपने बाल्यकाल में ही लोगो से मनवा लिया। उसने सर्वत्र उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम तक अपने ज्ञान का डंका बजाया और एक सदगुरू के रूप में समाज को एक मजूबत व्यवस्था प्रदान की। इस बालक का नाम शंकर था, जो आजकल के तथाकथित सदगुरूओं से बहुत भिन्न थे। आजकल के तथाकथित गुरू जहाँ अपने गृहस्थ शिष्य को 'मन लागों मेरो यार फकीरी में' या 'धन केवल एक मोहमाया है' आदि की शिक्षा देते हैं और संन्यासी शिष्य को धन की महत्ता सिखाते हैं तथा साथ ही गुरू द्वारा सिखाए गए उपदेश कि 'धन मोहमाया है' पर जब उनके ही गृहस्थ शिष्य उनसे प्रश्न कर बैठता हैं कि वे 'इस मोहमाया का क्या करें?' तो गुरू निर्विकार भाव से कहते है कि " ये सारी मोहमाया मेरे चरणों में अर्पित कर दो"। परंतु दूसरी तरफ बालक शंकर ने अपने अध्ययन और साधना के बल पर इन सभी दुविधाओं पर अपने स्पष्ट विचार प्रस्तुत किए और गृहस्थ एवं संन्यासी दोनों तरह के शिष्यों के लिए उचित मार्गदर्शन प्रस्तुत किए। उनकी कृतियाँ विशद् है।

आचार्य शंकर ने जगत को ब्रह्म का विर्वत (कारण) कहा है अर्थात् अविद्या के कारण मात्र है। अविद्या ज्ञान के अभाव से जन्म लेता है। जिसे आप इस तरह समझ सकते हैं कि यदि आपको फ्रेंच नहीं आती तो यह आपके लिए अविद्या होगी परंतु जैसे ही आप इसे सीख लेते हैं उसी पल से वह आपके लिये विद्या हो जाती है। अविद्या के कारण ही मिथ्या वस्तु का आभास होता है जैसे कभी-कभी अविद्या के कारण रस्सी के स्थान पर सर्पाभास हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि अविद्या की दो शक्तियां होती है – आवरण और विक्षेप। यहीं विक्षेप शक्ति मिथ्या सर्प का सृजन करती है और आवरण शक्ति सर्प के द्वारा रस्सी का आवरण करती है। इन्हीं दो कारणों की वजह से रस्सी अविद्या की अवस्था में सर्पवत् दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार ब्रह्म भी अविद्या के कारण जगतवत् दिखाई पड़ता है। अत: वेदांत में तीन सत्ताएं स्वीकृत की गई है:-

1. प्रतिभासिक (सर्प)- जो हमारे साधारण भ्रम की स्थिति में आभासित होता है और रस्सी के ज्ञान के कारण बाधित होता है।
2. व्यावहारिक (जगत)- जो मिथ्या तो है परंतु जब तक ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता तब तक सत्य प्रतीत होता है।
3. ब्रह्म- जिसे पारमार्थिक कहा जाता है। इसका ज्ञान होने से मुक्ति प्राप्त होती है।

इसे सरल भाषा में इस तरह भी समझ सकते हैं। जन्म के समय हमारा शरीर छोटा रहता है। धीरे-धीरे यही शरीर बड़ा होता जाता है, बड़ा होने का कारण एक ही है- भोजन। हमारा शरीर केवल हमारे द्वारा किए गए भोजन का संग्रह है। भोजन

संग्रह से बने इस 'नश्वर' शरीर को दूसरे का भोजन बनने हेतु छोड़ कर जाना पड़ता है। इस शरीर का नाम भी किसी और ने दिया है और प्राण छुटते ही यह केवल एक लाश रह जाता है। लेकिन ताउम्र हम इसे अपना समझ बैठते हैं। यह भी आभासी ही है। इस नश्वर शरीर में एक मन भी रहता है। ये सबसे बड़ा मिथ्या का आभास देता है। प्रत्येक पल नये-नये विचार देने का आभास दिलाता है। हम सभी इसके मिथ्याभास से परिचित हैं। हमें जो भी विचार आते हैं वे केवल हमारे द्वारा मस्तिष्क में संग्रहित डेटा के ही विभिन्न रुप हैं। आप जब इन विचारों पर गौर करेंगे तो पाएंगे कि वे केवल पहले से ज्ञात जानकारी का रुप है। जितना अधिक डेटा याददाश्त में संग्रहित होगा उतना ही अधिक विचारों में विविधता होगी। लोग इन्हीं विचारों में उलझ कर आस्तिक और नास्तिक हो जाते हैं। आपकी स्मरण में यदि आस्तिकता से संबंधित आंकड़े अधिक हैं तो आपका झुकाव आस्तिकता की ओर और यदि नास्तिकता से संबंधित आकड़े अधिक हैं तो नास्तिकता की ओर आपका झुकाव होगा। इसलिए इन आंकड़ों में बदलाव होते ही नास्तिक लोग आस्तिक में बदल जाते हैं तथा आस्तिक नास्तिक में। वास्तविक जीवन में यहाँ डेटा से तात्पर्य है-हमने जो भी पढ़ा है , संस्कार से प्राप्त किया है, समाज से सीखा है या अन्य किसी भी प्रक्रिया से प्राप्त किया है। लेकिन इन बातों की भी एक समस्या है। जैसे कि मैं तो इन बातों को समझ गया कि केवल डेटा का खेल है लेकिन दूसरे क्षण परिवार में किसी से विवाद हो गया - सारा ज्ञान धरा का धरा रह जाता है। फिर से वही निंदा रस में आनन्द लेने लग जाते हैं। इस ज्ञान से मुक्ति कठिन है। आस्तिकता और नास्तिकता के परे एक शक्ति है। जिससे परिचित होने के लिए एक रोचक कहानी है।

आचार्य शंकर आगे चलकर शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। शंकराचार्य वेदान्त मत का प्रचार कर ही रहे थे कि अचानक एक दिन उनके पेट में कुछ गड़बड़ हो गई। उनका शरीर शिथिल हो गया और वे एक शिलाखंड पर लेट गए। पेट दर्द के मारे अब उनसे उठा ही नहीं जा रहा था। तभी वहाँ से एक वैद्य गुजरे। वैद्य ने शंकराचार्य को दर्द से तड़पते देखा तो उन्हें एक पुड़िया देते हुए कहा कि बालक इस दवा को दही के साथ खा लेना। इतना कह कर वह वैद्य आगे बढ़ चला। उस वैद्य के चले जाने के कुछ समय उपरांत दही बेचने वाली एक महिला वहाँ से गुजरी। शंकराचार्य ने उस महिला से थोड़ी दही मांगी। वह महिला वहीं पास में बैठ गई और शंकराचार्य से कहा कि वह स्वयं उसके पास आकर दही ले जाए। शंकराचार्य ने बड़े विनम्र भाव से उस महिला से कहा 'माई, मुझमे तो उठने की भी शक्ति नहीं है'। तब दही वाली महिला का भेष धर कर आई जगदम्बा बोली "बेटा , तू तो 'शक्ति' का खंडन करता है तो शक्ति कहाँ से आएगी।" तत्पश्चात शंकराचार्य ने शक्ति के प्रभृति स्तोत्रों की रचना की। उनके द्वारा स्थापित चारों दिशाओं में चार मठ वास्तव में श्री विद्या उपासना के केंद्र ही है। श्री विद्या उपासना के लिए उन्होंने एक बहुत ही सुंदर रचना की है जो 'सौंदर्य लहरी' के नाम से विश्वभर में प्रसिद्ध है। इसके प्रथम चालीस श्लोक आनंद लहरी के नाम से विख्यात है तथा शेष साठ (मतांतर से तिरसठ) श्लोक सौंदर्य लहरी के नाम से भी जाने जाते है। संस्कृत वाङमय के अधिकांशत: स्तोत्र में फलश्रुति अर्थात् पाठ करने पर यह फल मिलेगा किंतु इसमें कोई फलश्रुति नहीं है। दक्षिण भारत में तो इस सौंदर्य लहरी का बहुत ही अधिक प्रचार- प्रसार है।

****

उत्तम कुमार मिश्रा
सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी

हिंदी ही क्यों, और क्यों हिंदी पखवाड़ा
कई भाषाओं में तो उन्नत है देश हमारा।
रंग-बिरंगे फूलों जैसी बोलियों की है ये फुलवारी,
विशाल बरगद सा देश ये, भिन्नता हर पत्ती हर डारी।

तो प्रश्न ये कि हिंदी की आवश्यकता क्या है,
भाषा समृद्ध देश में इसकी महत्ता क्या है।

सोचो तो एक प्यारी सी डोर है ये,
फैली इस ओर से उस ओर है ये।
मुझको तुमसे, तुमको मुझसे जोड़ती,
विलग व्यवहारों की बाधा तोड़ती।
बच्चों का माँ से बंधन जैसे,
सब भाषाओं का हिंदी से वैसे।

अनेकता में एकता का एहसाह है हिंदी
है ये भारत माँ के माथे की बिंदी।

तो आओ निज भाषा का रखते हुए मान,
हिंदी को बना यें सब में महान।
हिंदी को बनायें सबसे महान।।

****

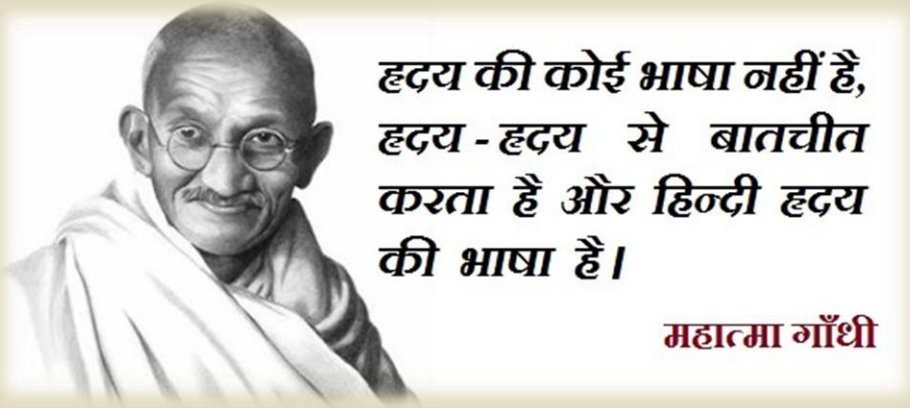

नीलम कुमारी साव
कनिष्ठ अनुवादक

शब्द.....
शक्ति भी, प्रेम भी, घृणा भी,
शब्द .....
सम्पूर्ण भी, असम्पूर्ण भी,
शब्द ही ब्रह्म, शब्द ही विष्णु
शब्द परम ब्रह्म भी.....

क्षणभंगुर संसार में.....
खेल निराले शब्द के ,
कभी पुष्प समान संजीले, सुकुमार
तो कभी काँटों की भाँति नुकीले भी.....

शब्द .....
खामोशी भी, अकुलाहट भी,
शब्द का है यह सारा जंजाल,
जिस पर चलता है यह संसार,
मधुर शब्द जहाँ लेते मन जीत,
वहीं कटु शब्द कर देते हृदय विदीर्ण .....

शब्द.....
समाधान भी, समस्या भी,
सुकून भी, परेशानी भी,
यह लक्ष्यभेदी बाण भी,
यही अमोघ अस्त्र भी.....

बड़े करामाती है ये शब्द.....
बनते काम बिगड़ जाते,
बिगड़ते काम बन जाते,
पल में, इनके अनूठे इस्तेमाल से,
जीवन को सहज और असहज बनाते,
ये चमत्कारी शब्द ही.....

शब्द.....
कर्णप्रिय भी, कर्कश भी,
इनके व्यवहार से,
अपने भी हो जाते पराए
और पराए भी लगते अपने से

ये शब्द जख्म भी, मरहम भी,
जनाब, बड़े मायावी है ये शब्द.....

दो सुंदर बोल शब्द के.....
सेहत.....परिवार..... समाज..... राष्ट्र....
सभी के लिए होते हैं .....
हितकारी..... शुभकारी.....फलकारी.....

****

रंजन कुमार
वरिष्ठ लेखापरीक्षक

‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी
‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी।।

नयनों में बसी है मूरत तेरी,
एक झलक पाकर ही, मुझे रुला जाओगी ।

‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी
‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी।।

बचपन में जो लोरी सुनायी,
भींगे बिस्तर खुद भी सोयी,
सिर्फ तुम ही ऐसा कर पाओगी।

‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी
‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी।।

अनजानें में बहुत सताया,
चुपके-चुपके तुझे रुलाया,
फिर भी हरदम स्नेह ही पाया,
सिर्फ तुम ही ऐसा कर पाओगी।

‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी
‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी।।

अपना तन-मन, सुध-बुध खोया,
मुझको तूने इंसान बनाया,
सारा जीवन भूल न पाऊँ,
न इस जनम उऋण हो पाऊँ।

‘माँ’ पुरानी यादों में मुझे बहला जाओगी,
हर एहसास में, हरपल रुला जाओगी।
‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी
‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी।।

‘माँ’ रब से माँगा बस एक ही दुआ,
मेरे हर जनम में, तुम ही मेरी ‘माँ’ होगी,
सिर्फ तुम ही मेरी ‘माँ’ होगी।

‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी
‘माँ’, तुम बहुत याद आओगी ।।

हसरत

राजु हाजरा
सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी

मत पूछों अपनी क्या हसरत है
जो चाहूँ, पालूँ, फितरत है।
कर लूँ दुनिया, मैं मुठ्ठी में
दुनिया मुझसे ही, जन्नत है।।

नजरें इनायत गर कर दूँ
करम खुदा का हो जाये।
नज़र अगर मैं फेर लूँ
ज़न्नत भी जहन्नुम हो जाये।।

है ख्वाब मेरी इस शोखी में
आफताब मेरी इस शोखी में ।
अफसाना बयाँ ना हो सकता
बेहिसाब अदा इस शोखी में।।

पहले ही दर्द क्या कुछ कम था
दर्दे दिल पर अब ना बोझ बढ़ा।
दीवानगी की हद ही उलफत है
जलने का मजा इस शोखी में ।।

खम गेसुँ पर दम निकले उनका
हर चाल पे आह कर जी मचले।
पलकों को उठा दूँ तो दिन निकले
पलकें झुकाऊँ तो शाम ढले।।

है अगर मुझे पाने की हसरत
जलना होगा बन, परवाना।
रोशन शमाँ है, मेरा हुस्न
दिल राख पेश कर नज़राना।।

****

असम की मनोरम अरण्य वाटिका : काज़ीरंगा राष्ट्रीय उद्यान

दीपान्निता दास
कनिष्ठ अनुवादक

असम राज्य में अवस्थित काज़ीरंगा राष्ट्रीय उद्यान दुनियाभर में अपने प्राकृतिक सौन्दर्य एवं जैविक विविधता के लिए मशहूर है। हमें भी इसी वर्ष इस अभ्यारण्य का सैर करने का अवसर प्राप्त हुआ जब मेरे कुछ दूर के रिश्तेदारों की तरफ से, जो कि असम में बसे हुए हैं, हमें एक शादी का निमंत्रण प्राप्त हुआ। शादी फरवरी माह में होने वाली थी, इसलिए मेरे चाचाजी, जो कि मेरे पापा के मौसेरे भाई हैं, ने हमारी गुवाहाटी की हवाई यात्रा की टिकटों की बुकिंग पहले से ही करवा ली थीं। सरकारी सेवक होने के नाते मेरे पिताजी ने अपने कर्मजीवन की शुरुआत गुवाहाटी, असम से की थी — मेरे पिताजी टी बोर्ड ऑफ इण्डिया में इन्सपेक्टर का पदभार संभाल रहे थे एवं उनकी पहली तैनाती असम के चाय बागानों में हुई थी।

काज़ीरंगा राष्ट्रीय उद्यान भारत के असम राज्य का एक राष्ट्रीय उद्यान है जो एक सींग वाले गैंडे (भारतीय गैंडा) के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है।इस अभ्यारण्य को, जो दुनिया के विरल एक सिंह वाले गैंडे की प्रजाति के दो तिहाई हिस्से का संरक्षण करता है, एक यूनेस्को विश्व विरासत स्थल (UNESCO World Heritage Site) का ख़िताब प्राप्त है। यूनेस्को विश्व विरासत स्थल ऐसे खास स्थानों (जैसे वन क्षेत्र, पर्वत, झील, मरुस्थल, स्मारक, भवन, या शहर इत्यादि) को कहा जाता है, जो विश्व विरासत स्थल समिति द्वारा चयनित होते हैं; और यही समिति इन स्थलों की देख-रेख यूनेस्को के तत्वावधान में करती है। मार्च 2018 में आयोजित जनगणना के अनुसार जो कि असम सरकार के वन विभाग और कुछ मान्यता प्राप्त वन्यजीव गैर सरकारी संगठनों द्वारा संयुक्त रूप से चलाया गया था, काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान में गैंडे या राइनो (Rhino) की आबादी 2,413 है। इनमें 1,641 वयस्क गैंडे (642 नर, 793 मादा, 206 अवर्गीकृत); 387 उप-वयस्क (116 नर, 149 मादा, 122 अवर्गीकृत); और 385 बछड़ें शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, यह प्राकृतिक पशु क्रीड़ावन हाथियों, जंगली पानी के भैंस और दलदली मृग – बारहसिंगा - की बड़ी प्रजनन की आबादी का आवास स्थल भी है। असम राज्य के नगाँव ज़िले में स्थापित काजीरंगा राष्ट्रीय ऑर्किड (Orchid) और जैव विविधता उद्यान भारत में पाई जाने वाली अनुमानित 1,314 ऑर्किड फूल के प्रजातियों में से 500 से अधिक का दावा करता है।

हमारे घूमने की सूची तैयार की गई। सुबह-सुबह निकलना था। हमने कैब बूक कर रखी थी। बीच में एक स्टॉप पर रुकने के अलावा हमने लगातार गाड़ी से रास्ता तय किया। वहां पहुँचने पर ऐसा महसूस होने लगा मानो हम किसी निरीह प्राकृतिक सौंदर्य के बीचोबीच पहुँच गये हों। हमने वहाँ बॉनहाबी (Bonhabi) गेस्ट हाउस में मध्याह्न भोजन किया। फिर आहार सम्पन्न करने के पश्चात् हम सब जीप में सवार होकर वन की यात्रा के लिए निकल पड़े । हमारे गाइड् के मार्गदर्शन में हम जंगल के एक प्रांत से लेकर दूसरे प्रांत तक वन्य जीवों को विचरण करते हुए देखने का अवसर प्राप्त करने में जुट गए।

इसी दौरान हमारे गाइड महोदय ने एक कमाल कर दिखाया। गैंडे के झुण्ड के पास के वनांचल से गुज़रने पर भी हमें उन्होंने एकबार भी पलट कर नहीं देखा था। तो उनका ध्यान आकृष्ट करने के लिए हमारे गाइड् ने वहीं गाड़ी में सवार होकर ही हमें गैंडे की पुकार की धुन निकालकर सुनाई ताकि इससे प्रभावित होते हुए गैंडे के झुण्ड का कोई सदस्य आकृष्ट होकर हमारी ओर देखने लग जाए।

ऐसा करते हुए हम सब जीप में ही आगे बढ़ते गये और क्रमश: हमारे दायीं ओर की घास पर चरने वाला एक गैंडा हमें देख कुछ देर के लिए वही बैठकर चढ़ने लगा। ऐसा देख हम आशातुर होकर पीछे नज़र रखते हुए धीरे-धीरे आगे की ओर जाने लगे ही थे कि पीछे से गैंडे ने उठकर अपनी राह पकड़ना शुरु किया। निराश होते हुए हम सब वहां से आगे बढ़ने ही लगे थे कि गैंडा कुछ मन्द गति से अपनी धुन में चलने लगा। उसी दौरान कुछ ढूँढने की प्रक्रिया के चलते पीछे की ओर उसके मुड़कर देखने पर हमें भी उसने ज़रा देर के लिए निहार कर पिछवाड़ा घुमाते हुए पुन: मन्द गति से अपनी ही धुन में आगे बढ़ने लगा।

उस समय ऐनिमल कॉल या पशु पुकार की प्रभावकारिता का हमें अहसास हुआ। । गाइड् के नज़रिए से हमें यह ज्ञात हुआ कि अलार्म कॉल एवं मेटिंग कॉल भी इसी तरह पशु पुकार के उप-प्रकारों में शामिल हैं। हम सब प्रकृति के इस अद्भुत बहुआयामी संर्पक प्रणाली के बारे में सोचते-सोचते आगे का रास्ता तय करने लगे।

जीप अब जहां से गुज़र रही थी वहां दोनों तरफ चरगाहें थे। कुछ-कुछ दूरी पर और कभी तो किनारे के बहुत ही पास कुछ हिरण चरते हुए नज़र आ रहे थे। वहीं से धीमी गति से बढ़ते हुए हमें हिरणों का एक झुण्ड नज़र आया जिनमें हिरण के शावक भी अपने परिजनों के संग धूप में चरने का प्रयास कर रहे थे। वहीं से कुछ दूरी पर एक टीले के आस-पास ही एक गैंडे का शावक भी अकेला चराई कर रहा था। चरते-चरते वह इन हिरणों की ओर देख रहा था और आश्चर्य की बात तो यह थी कि वयस्क हिरणें भी इसका ध्यान रख रहे थे। हमें क्रमश: यह जानने को मिला कि हिरण की यह प्रजाति बारहसिंगा कहलाई जाती है। उनके सींग की आकृति अनोखे किस्म की घुमावदार थी। गाइड् महोदय ने हमें बताया कि इसी विशिष्ट आकृति के कारण ही उनका नाम बारहसिंगा पड़ गया था।

हमारे गाइड् के इस हुनर से हम कुछ विस्मित रह गए। पशु पुकार के इस वास्तविक प्रयोग से हमारे सफर के दौरे में काफी रौनक आ गई थी। कभी-कभी एकाध गैंडे एवं हाथी के शावक भी अपने परिवार जनों के संग नज़र आ रहे थे तो हमें काफी मनोरम प्रतीत हो रहा था। उनमें से कुछ के तो अब तक सामने के सींग भी नहीं निकले थे। अपने परिजनों के संग खिलखिलाते और खेलते हुए वह हमें काफी प्यारे लग रहे थे।

आगे की ओर अपनी सवारी को बढ़ाते हुए हम किसी एक दलदली भूमि के पास से गुज़रने लगे। उस दिन रोशनी कुछ धुमिल सी थी और बादल भी आंशिक तौर पर छाए हुए थे। लेकिन कुछ देर के लिए सूरज की किरणें उस वनघाटी की सघन पर्णावली को चीरते हुए अपनी आलोक वर्षा चारों ओर फैलाने लगी थीं। इतने में बायी ओर की दलदली भूमि की तरफ हमारे गाइड् ने इशारा करते हुए हमें कुछ दिखाने का प्रयास किया । एकाएक हमें वहां एक घड़ियाल धूप सेंकता हुआ नज़र आया। उसके आपादमस्तक आलस मत्त लहज़े को देखकर हमें बड़ा आनन्द आया। गाइड् के बताने पर हमें पता चला कि वह एक विशिष्ट प्रजाति का घड़ियाल था जिसे **बेंगॉल मॉनिटर लिज़ार्ड** भी कहा जाता है। हमें यह जानकारी भी मिली कि दुनियाभर के घड़ियालों की लुप्तप्राय प्रजातियों में भी इनकी गिनती शामिल है।

उसी प्रांत के एक और छोर पर हमें हमारे गाइड् ने कुछ इशारा किया और बहुत धीमी गति से जीप को कच्चे रास्ते पर चढ़ाते हुए ले जाने लगे। हमें अपने दोनों ओर झीलें नज़र आईं और वहां की ऊँची घास के किनारे कुछ नीली आभा के होने का आभास भी हुआ। हमने अपने फोन के कैमरे के लेन्स से देखा तो यह पाया कि वहां पर कुछ विरल प्रजाति की पक्षियों का वह नज़ारा था। हमें कहा गया कि इनको **इण्डियन रोलर** के नाम से जाना जाता है और यह साधारणत: ऐसी ही दलदली भूमियों पर पाए जाते हैं। इनकी प्राकृतिक सुंदरता बड़ी मनोरम थी। कुछ देर उन नीली-सुनहरी पंखों वाले पंछियों को वहां उड़ान भरते एवं मछलियों का शिकार करते हुए निहारने के पश्चात् हम भी आगे की ओर बढ़ने लगे। कुछ पंछी को तालाब में खेलते हुए देखकर हमें इस दृश्य की विरलता का आभास हुआ। इनके आस-पास झील के किनारे कुछ **ऑटर** अथवा ऊदबिलाव भी वहां रुक-रुककर गोतें लगा रहे थे । मछली के शिकार में कभी-

कभार यह उन पंछियों को भी पीछे छोड़ रहे थे। फिर भी वह पंछी अपनी ही धुन में नदी किनारे जुटे हुए थे। ग़ौर करने का विषय तो यह था कि इन दो भिन्न प्रजातियों की प्राकृतिक मैत्री देखने योग्य थी। उसी पानी में इनके चारों ओर कई **टर्टल** या कछुएं अपनी ही धुन में ही मंडरा रहे थे। उनमें से कुछ तो वहीं पर अवस्थित छोटी-छोटी चट्टानों पर आसीन होकर परिवार सहित धूप सेंकने का आनन्द ले रहे थे। जैव विविधता के ऐसे अद्भुत विरल समागम का दृश्य हमारे लिए किसी दुर्लभ खज़ाने की सफल खोज से कम नहीं था।

ऐसे ही एक दलदली भूमि वाले क्षेत्र से गुज़रते हुए कुछ जल में विचरण करने वाले वन्य भैंस हमें वहां नज़र आए। यह जानकर हमें विस्मय हुआ कि यह अभ्यारण्य विश्व में पाए जाने वाले भैंसों की इस प्रजाति के शेष आवास स्थलों में से एक था। यूनेस्को द्वारा इसी जैव-विशिष्टता के कारण इसे चिह्नित किया गया था। इस तरह के कुछ और पशु प्रजातियों के लिए भी यह वनघाटी उनका आवास स्थल बना हुआ था। वहां से कुछ ही दूरी पर कच्चे ट्रैक के किनारे हमें एक अद्भूत दृश्य देखने का अवसर भी मिला। वम्रकूट या **ऐन्टहिल** कहा जाने वाला चीटियों का वह छोटा सा टीला अपने आप में ही प्रकृति का एक और अनूठा दृश्य था। उसी टीले के आस-पास कुछ लाल पंखों वाले जंगली मुर्गे घूम-घूम कर चुगाई करते हुए नज़र आ रहे थे।

वहां के आलोकित अरण्यक परिवेश से परिचित होते-होते हम आगे सवारी करते हुए कुछ ऐसे विचित्र अंचलों से गुज़रने लगे जहां कुछ जगहों पर हमें दलदली घास के जले हुये होने का आभास होने लगा। कुछ चर्चा के पश्चात् हमें यह पता चला कि कई महीनों के अंतराल में वहां दावानल या **फॉरेस्ट फायर** के वजह से ऐसा वातावरण बना हुआ था। हमें मालूम पड़ा कि इस अभ्यारण्य में दावानल — चाहे वह कृत्रिम हो या अन्यथा —तथा जून से अगस्त के महीनों के बीच बाढ़ का आना स्वाभाविक प्राकृतिक प्रणालियां थीं। इससे सभी वनवासी वाक़िफ थे। ऐसा भी देखा गया था कि कुछ वनवासी तो बाढ़ों से बचाव के लिए परिजनों सहित किसी टीले पर अस्थायी रूप से आश्रित होते हुए भी देखे गए हैं। इस दौरान उद्यान पर्यटकों के लिए बन्द रखा जाता है।

उन प्रांतों से गुज़रते समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो इन खड़े घासों की लंबी कलमों पर काली स्याही के निशान बने हुए हों। कुछ परिचर्चा के पश्चात् हमें यह पता चला कि इन्हें **एलिफैन्ट ग्रास** के नाम से भी जाना जाता है जो कि विभिन्न लंबे घासों या घास के पौधों की एक प्रजाति कही जा सकती है। यह घास अफ्रीका में मूल रूप से पाई जाती है। यह एक बारहमासी घास भी कही जाती है जिसकी खेती चारों के लिए ही मूल्यत: की जाती है। हमने यह भी जाना कि कागज़ के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसलिए, यह भी वहां के पर्यटीय आकर्षणों में से एक माना जाता है। इस विचित्र अभ्यारण्य के प्राकृतिक सौंदर्य का यह रौद्र रूप ही शायद इसका सूत्र हो।

सहसा वहां से निकलने के लिए बैम्बू ट्रैक (बाँस-पथ)से होते हुए दो रास्तें बने हुए थे। इन दो वैकल्पिक पथों में से गाड़ी को घुमाते हुए हमने एक रास्ता तय किया। सुबह से कुछ विरल दृश्य दर्शनों के पश्चात् अब दोपहर से आगे गोधूली का समय हमारे समक्ष था। कुछ ही क्षणों में वहां के घने अरण्यक परिवेश में धीरे-धीरे सूरज के डूबने का आभास होने लगा। सवारी तय करते हुए एकाएक हमें एक झील के पास पहुँचाया गया जहां एक वॉच टावर (Watch Tower) था। वहां पर बने हुए एक दो-मंज़िले व्यूप्वॉइन्ट से कुछ पर्यटक तस्वीरें खींचने के उद्देश्य से वहां पर जलपान करने आए हुए प्रजातियों के विरल दृश्य का आनन्द लेने लगे। हमें वहाँ हाथियों पर कई सवारियाँ भी पहुँचती हुई नज़र आईं।

इस दौरान हमने तय किया कि जीप से ही हम सामने की जलधारा की ओर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए बैठे रहेंगे। हमारे गाइड् ने भी हमें यही सुझाया । कुछ क्षणों के पश्चात् वहां से एक **साम्भर** प्रजाति का हिरण अपनी तृष्णा मिटाने के लिए पानी के किनारे तक पहुँचकर वहां पर रुककर पानी पीने लगा। जैसे ही वह जलधारा के किनारे से होते हुए धीरे-धीरे कदम बढ़ाने लगा उसे वहां पर मौजूद लोगों के समक्ष होने का आभास हुआ। ऐसा होने पर उसे हमें एवं

हमारे जैसे वहां कुछ और पर्यटकों के ध्यान का केंद्र होने का अहसास होते ही वह तुरन्त अपना रास्ता तय करके चलता बना। उसकी मनमोहक चाल से झील से वनालय की ओर का रास्ता तय करना का दृश्य देखते ही हम सब कुछ क्षणों के लिए स्तंभित रह गए। इसी दौरान कुछ लोगों ने इस विरल दृश्य की जीवंत तस्वीर भी अपने कैमरे में कैद करने का प्रयास किया। इस संयोग के पश्चात् हमें वहां रुककर ही झील के सामने इंतज़ार करने वाला विकल्प काफी पसन्द आया।

प्रसन्नचित्त होकर हमने वहां से आगे का सफर तय किया। हमने अपने आस-पास के वातावरण की ओर नज़र फेरा तो गोधूली का प्रहर उस समय शाम का स्वरूप धारण करने की धुन में था। जीप को वहां के कच्चे रास्ते से ले जाते हुए पक्षियों का कोलाहल अब चारों ओर की नीरवता को चीरते हुए ज़ोरों से गूँजने लगा। वहां की बची हुई रोशनी की शिथिल किरणों ने अब हमें पेड़ों पर बैठे एक और लुप्तप्राय प्रजाति से परिचित करवाया – वहां का **ब्लू-हॉर्नबिल**।

पेड़ों पर ग़ौर किया तो अब वह हमें कुछ-कुछ दूरी पर डालियों पर बैठे हुए नज़र आए। इनकी प्रजाति के नन्हे शावक भी अपने परिजनों सहित डालों पर लगे फूलों के संग शाम का दृश्य निहार रहे थे। उनके साथ-साथ उनके आस-पास उन डालियों पर लगे हुए बैंगनी रंग की अनोखी आकृति वाले फूल भी बड़े मनमोहक प्रतीत हो रहे थे। हमें आभास हुआ कि इसी तरह के फूल उस जगह तक पहुँचने वाली राह पर भी बिखरें हुए मिले थे। तब हमारे संशय को दूर करते हुए गाइड् महोदय ने हमें बताया कि वह पेड़ भारत में पाई जाने वाली अनुमानित 1,314 ऑर्किड फूल के प्रजातियों में से एक है जो कि काज़ीरंगा के वनांचल में मौजूद 500 प्रजातियों में शामिल है।

एक और विस्मित कर देने वाला दृश्य उन पेड़ों पर रहने वाले एक अन्य किस्म के वनवासी थे। गाइड् महोदय के मार्गदर्शन से हमें यह पता चला कि इनकी गिनती भी इनके अनोखे बसेरे व पड़ोसियों की भाँति ही लुप्तप्राय प्रजातियों में की जाती है। वह प्रजाति वहां पर पाए जाने वाले सुनहरे तन वाले लंगूरों की थी। इन्हें भी कुछ दूरी पर पेड़ों से लटकते हुए पाया गया जिनमें से इनके बच्चों के कारनामें बड़े प्यारे लग रहे थे। उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पेड़ों पर हवाई-यात्रा करते हुए वह भी उस कोलाहल को और समृद्ध करने में जुटे हुए हों – जैसे कि शाम के गुज़रने और रात्रि के आगमन का आभास करा रहे हों।

गोधूली का समय अब लगभग अपने अंतिम चरण पर पहुँच चुका था। दिन अब शाम में कभी भी ढलने वाली थी। इस विचित्र अरण्य वाटिका का प्राकृतिक सौंदर्य अब किसी भी समय एक रौद्र रूप धारण करने की फिराक़ में था। हमारे गाइड् महाशय ने तभी हमें बताया कि हम उस प्रांत के आस-पास पहुँच चुके हैं जहां पर ज्यादातर वहां के वन्य बाघों का बसेरा होता है। उनके कहने पर हमें मालूम हुआ कि बाघों की तादाद में पहले से काफी कमी आ गयी थी। परिस्थिति अब ऐसी हो गई थी कि वह अब ज्यादातर जलाशयों को आस-पास ही वे अपना बसेरा बना रहे थे और जंगल के इस ओर ही पाये जाने लगे थे। इस तथ्य के खुलासे के पश्चात् हम सबने यह निश्चय किया कि शाम होने में कुछ क्षण रहते-रहते ही हम वहां से उद्यान के मुख्य प्रवेश द्वार की ओर का रास्ता तय करेंगे। अब उस विचित्र वनालय के मनमोहक अरण्यक परिवेश से विदा लेने का समय आ गया था।

सफर को वही पर पूरा करने का निश्चय करते ही हमारी सवारी का रुख़ उस तरफ मोड़ते हुए गाइड् महाशय ने हमें उद्यान के प्रवेश स्थल तक पहुँचाने का रास्ता तय किया। उद्यान से निकलने की राह तय करते हुए अपने सफर के अंतिम छोर पर पहुँचकर अब धीरे-धीरे मन कुछ व्याकुल सा हो रहा था। उद्यान से वापस लौटते हुए हमें कई पर्यटकवृन्द हाथियों की सवारियों पर हमारे जैसे ही वापसी का रास्ता तय करते हुए नज़र आए । तभी गाइड् से हमें पता चला कि प्रवेश स्थल के उस पार स्थित कुछ दुकानों पर कई विशिष्ट वस्तुएं वहां के यादगार के तौर पर ली जा सकती हैं। अंतत: उद्यान से निकलने पर हमने जीप को वहां पहुँचकर कुछ देर के लिए रोकते हुए एक दुकान में प्रवेश किया। अब हम सब इस प्राकृतिक समावेश के यादगार के तौर पर कुछ वस्तुएं चयनित करने में जुट गए। मैंने और बहन ने मिलकर गैंडे के

एक लकड़ी के बने सुडौल पुतले का चयन किया और माँ ने लकड़ी से बनी एक पंख फेरती मोर की सुंदर सी यादगार पसन्द की।

हमारे गाइड् महाशय ने उस समय हमें कुछ और तथ्यों से भी परिचित करवाया। पास ही स्थित एक संग्रहालय में वह हमें लेकर गये जहां असम में पाए जाने वाले चावल के लगभग 1600 प्रकारों के चावल में से उस प्रांत में उपलब्ध 500 तरह के चावल के किस्म मौजूद थे। इनसे अवगत होने के पश्चात असम में पाए जाने वाले जोहा चावल से भी हम परिचित हुए जो कि छोटे दाने वाले एवं खुश्बुदार होने के कारण वहां के सबसे लोकप्रिय चावल माने जाते हैं।

अब वापसी की राह तय करते-करते हम सबने जीप से निकलते हुए हमारे गाइड् महोदय से विदा लिया। फिर वहां के लॉज में सुबह से रूकी हुई अपनी कैब की तरफ हम अपने कदम बढ़ाने लगे। कुछ ही देर में हम सब उस वनांचल से निकलने की राह पर थे। अब शाम के निरंतर बढ़ते हुए अंधेरे में हमें गाड़ी के चारों ओर के घुमावदार पथ का आभास होने लगा था जो कि घने वनस्पति से आवरित था। रास्ते के दोनों ओर की पहाड़ियां सहस्र घनी लताओं से इस प्रकार लिपटी हुई थीं मानो अपनी भुजाओं से प्रकृति के किसी बहुमूल्य खज़ाने का संरक्षण कर रही हों। चार घंटे की वापसी का रास्ता तय करने के पश्चात् हमने सीधे अपने होटल पहुँचकर ही विराम लिया।

अन्तत: हमारे काज़ीरंगा राष्ट्रीय उद्यान का यह अनोखा सफर हम सब के लिए किसी दुष्प्राप्य प्राकृतिक खज़ाने की प्राप्ति से कम नहीं रहा। कभी-कभी ऐसा लगता है कि इस मनमोहक अरण्यक क्रीड़ावन से जुड़ी स्मृतियां अभी भी इसमें समाए वन्यजीवों की भाँति ही हमारे मन में उसी जीवन्त स्वरूप में ही कैद हों।

****

विजय कुमार
एम टी एस

जिनके दिलों में रहते,
पास उनके ना होने की मजबूरी है।
घर जिनके हैं पास,
उनके दिलों से कितनी दूरी है।
इन गैरों की बस्ती में अपनों को तलाशने की,
नाकाम कोशिशें किए जा रहा हूं।
इनकी स्वार्थ में भी परमार्थ की आस लगाए,
खुद से ही दूर हुए जा रहा हूं।

महीने की अंतिम तारिख तय करती जहां,
आपकी इज्जत का आकार।
शालीनता और ईमानदारी समझी जाती जहां,
आपकी विवशता का आधार।
समझते-समझते इन चेहरों की उलझी हंसी,
खुद को ही खोए जा रहा हूं।
जीवन सरिता में मेरे,
जिसका अस्तिव बूंद-भर का भी नहीं,
कथनी- करनी से उनके होकर फितूर,
खुद से ही दूर हुए जा रहा हूं।

जोड़े जाते जहां रिश्ते, गिनकर घर की ईंटें ।
कद्र नहीं वहां स्वाभिमान की ऐ हमदम,
गरीब की चादर में पोंछे जाते जहां कीचड़ की छींटें।
रहकर काजल की कोठरी में,
कालिख का कसूर औरों को दिए जा रहा हूं।
काग़जों से साबित होते रिश्ते जहां,
होकर सोल मेट और कामरेड किसी का,
खुद से ही दूर हुए जा रहा हूं।

रंगने को महफ़िल अपनी बातों से,
खुद पर ही हंसता हूं कई रातों से,
किया सितम ऐसा हमने अपनी हालातों से,
कि खेलने लगे आज सब हमारे जज्बातों से,

उनकी पसंद का जीते-जीते,
तन में ग़म और मन में वहम लिए,
हर क्षण मरे जा रहा हूं।
बेवजह लोगों की बेवजह बातों से आहत,
खुद से ही दूर हुए जा रहा हूं।

****

विजय कुमार
एम टी एस

सेवा में हमारी, खुद को कर अर्पित,
मुकद्दर मान इसे ही, वो होती बड़ी गर्वित।
कोई क्या दे ही सकता है, भला उसको,
जो दुआएं भी अपने हक़ की, दे देती रब को।
धर्म-कर्म उसके, इंसानों सी नहीं,
आसमां की किसी देवी जैसी होती है।
क्या कहूं तुम्हें, माँ कैसी होती है.....

परीक्षा होती हमारी, रात-भर साथ जगती वो,
अस्वस्थता में हमारी, सिरहाने पीड़ा सहती वो।
रहें हम दीवार के उस पार या सात समंदर पार,
हमारी खामोशियों को बना लेती अपनी राजदार।
नि:स्वार्थ ममता के आंचल तले,
हर पथ उसकी अग्निपथ जैसी होती है।
क्या कहूँ तुम्हें, माँ कैसी होती है.....

झोंक कर खुद को हमारी क़िस्मत में,
तनिक भी उफ ना करती है।
जलकर अपनी रोशनी में,
हमारी रातों का अंधेरा हरती है।
कामना उसकी हरदम,
क़दमों में हमारी खुशियां बिछाने की होती है,
कांटों को कलियां बनाने जैसी होती है।
क्या कहूं तुम्हें, मां कैसी होती है.....

बैर हो सके तो, कभी देवी-देवताओं से ही कर लेना,
इक कुण्ठा की ज्वाला में, कभी तुम भी जल लेना,
आंखों से उसके, एक कतरा भी छलके जिस क्षण,
आँसूओं के उस सैलाब से, क्या खुद को बचा पाओगे?

क़यामत की रात उसे, क्या मुख को दिखा पाओगे?
माँ की ममता, ममता की छाया, छाया की शीतलता,
जर्रे-सी मरुभूमि में, सागर की तृष्णा जैसी होती है।
क्या कहूं तुम्हें, माँ कैसी होती है.....

****

कल्पना वर्मा
कनिष्ठ अनुवादक
शाखा कार्यालय: पोर्ट ब्लेयर

कल ना हम होंगे, ना कोई शिकवा होगी,
कुछ धुंधभरी कुछ ताज़ा वफ़ा होगी,
खुशनसीब है हम जिन्हें खुदा से कुछ लम्हे मिले,
यहाँ तो ऐसे भी है, जिनका ना आसमां ना जमीं होगी,
कल ना हम होंगे, ना कोई शिकवा होगी।

क्यों ज़ाया करते हो वक़्त बेशकीमती,
न महफिल होगी न कल कोई शमा होगी,
रुसवा और तनहाई में रुखसत हो जाओगे,
ना अहम होगा, ना कोई बन्दिशें होंगी
कल ना हम होंगे, ना कोई शिकवा होगी।

क्यों बिखेरते हो उस बेगैरत माज़ी को,
जिसमें खुशियों के चिराग बुझते दिखाई दे,
भर एक चाभी उस दरियादिली को,
जिसमे यारों की कुर्बानियाँ रोशन दिखाई दे,
कल ना हम होंगे, ना कोई शिकवा होगी।

धीमी-धीमी चाल से हर एक लम्हा बीत जाएगा,
क्या छोड़ चला, या समेटा सब यहाँ रह जाएगा,
चलो फिर तलाश करें उन जगमगाती लौ को,
जिसमें प्यार का आसमां और दोस्ती की जमीं होंगी,
कल ना हम होंगे, ना कोई शिकवा होगी।

देख कर तुमको जो दिन शुरू होता था,
अब तो शाम भी गमगीन बेज़ुबान होगी,
आईना था तेरा वो मासूम चेहरा,
अब तो किरणें भी बदरंग बेजान होंगी,
कल ना हम होंगे, न कोई शिकवा होगी।

****

कल्पना वर्मा
कनिष्ठ अनुवादक
शाखा कार्यालय: पोर्ट ब्लेयर

अंडमान की लहरों में,
बह गए सारे है क्षेत्रवाद,
हिन्दुस्तानी की धुन पर,
मिट गए सारे भाषा विवाद

अप्रतिम वृक्ष छाया में ,
हिल्लोरें भरता है मन अलौकिक,
नाना प्रकार जीव राग पर,
नृत्य करता है भास्कर भौगोलिक

हर बाग़ प्रेम प्रतिक सागर है,
हर पंछी है उन्मुक्त गगन,
हर गृह हरित क्रांति तो,
हर बालक है मदमस्त पवन

हर बेला उष्म वर्षा के,
गीत हमें सुनाती है,
मृगनयनी सी पत्ती की लचक,
हृदय उद्गम तक पहुँच जाती है

कालापानी क्या है ये तो,
जीवन सागर के सतरंगी तरंग,
अज्ञानी मन उसका,
जिसका छूटा यह अद्वितीय मृदंग

वशीकरण है स्वच्छ जल का,
या पंछियों का राग-टोना है,
भूल गया कवि मन लेखनी को,
शीत पवन में अब सोना है....

****